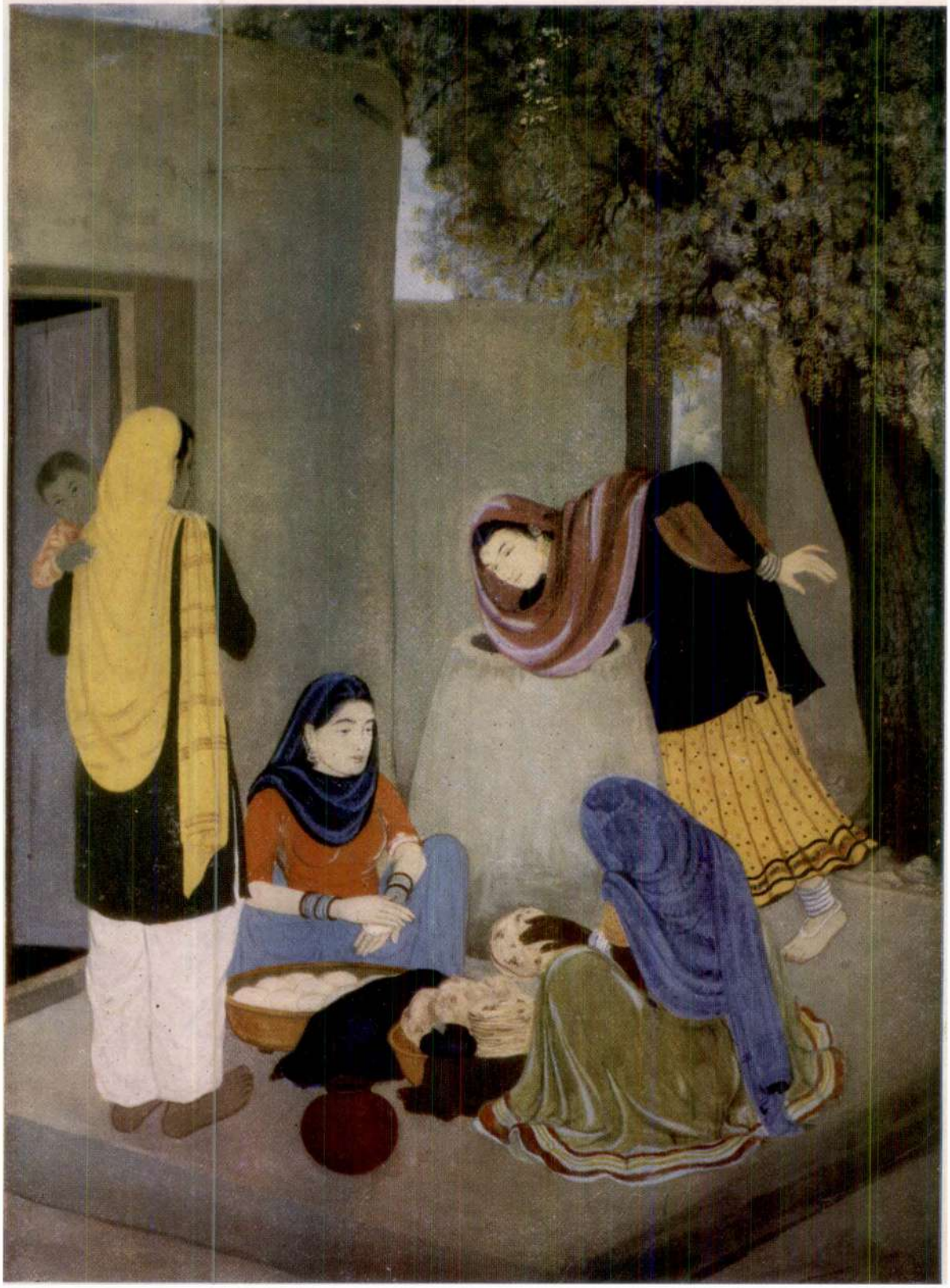
अप्रैल, 1985 डेढ़ रुपया

आजकल

पंजाब विशेषांक





सद्भाव कविता का विमोचन

स्वर्गीय प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी जी के जन्म-दिवस की पूर्व संध्या पर, राष्ट्रीय सद्भाव से जुड़ी काव्यकृति (सद्भाव कविता) का विमोचन, तत्कालीन सूचना एवं प्रसारण मंत्री श्री एच. के. एल भगत ने किया।

इस अवसर पर श्री राजेन्द्र अवस्थी, प्रो. जनार्दन द्विवेदी तथा डा. श्यामसिंह शशि जी ने पुस्तक का परिचय देते हुए बताया कि आज हर तरफ निराशा, अविश्वास और कुंठा के स्वर चारों तरफ उठ रहे हैं और इस समय विघटनकारी तत्वों द्वारा राष्ट्र की अखंडता और एकता को जो खतरा पैदा हो रहा है। उसका सही हल बन्दूक की नोक नहीं है। उसका हल सद्भावना है। इससे जुड़े कवियों ने समय की सही जरूरत को ध्यान में रख कर, सद्भावना की आवश्यकता को राष्ट्र की मुख्य धारा के साथ जोड़ा है।

'सद्भाव कविता' के संपादक श्री सुरेश नीरव ने (बोधि वृक्ष का क्या होगा) सद्भाव गीत पढ़ा। जिसे इस अवसर पर आये राजधानी के जाने-माने रचनाकारों के मध्य, काफी सराहा गया। इस पुस्तक में सम्मिलित रचनाकार हैं—श्री वीरेन्द्र मिश्र, डा. श्याम सिंह शशि, विजय कपूर, अश्विनी कुमार, अशोक आन्द्रे व सुरेश नीरव।

अंत में श्री एच. के. एल. भगत ने कहा कि जब-जब देश पर कोई समस्या आई है तभी इस समय के युवा वर्ग ने—(चाहे वे किसी भी मच से जुड़े हों) हमेशा सबसे आगे आकर, उन समस्याओं को दूर किया है। उन्होंने कहा कि आज के सन्दर्भ में इस पुस्तक का महत्व और भी बढ़ गया है। इससे हमारी आस्थाओं को काफी बल मिला है। इस अवसर पर तत्कालीन सूचना एवं प्रसारण उप मंत्री श्री गुलाब नवी आजाद ने भी अपनी उपस्थिति से इस कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई।

अशोक आन्द्रे
1072, बी. के. एस. मार्ग नई दिल्ली-110001.

'जीवन के कुछ सत्य हैं जो कविताओं की शक्ल में बिखर गये हैं'

—कवि श्रीकांत वर्मा

पिछले दिनों त्रिवेणी सभागार (दिल्ली) में राजकमल प्रकाशन की ओर से आयोजित हिन्दी के वरिष्ठ कवि श्री श्रीकांत वर्मा का कोई पौन घन्टे का काव्यपाठ आमंत्रित श्रोताओं के समक्ष एक प्रीतिकर अनुभव था। दरअसल यह आयोजन उनके सद्य: प्रकाशित काव्य-संग्रह 'मगध' के विमोचन समारोह पर एकाग्र था किन्तु विमोचन समारोह की सारी औपचारिकताओं से अलग।

प्रारंभ में काव्य-संग्रह का विमोचन करते हुए कवि आलोचक श्री अशोक वाजपेयी ने कवि श्रीकांत वर्मा के काव्य-संसार की समीक्षा करते हुए कहा, "आज से कोई 20 वर्ष पहले मैंने माया दर्पण की कविताओं की समीक्षा करते हुए श्रीकांत वर्मा की कविताओं को 'समकालीन नरक का भूगोल' कहा था किन्तु इस संग्रह की कविताओं को पढ़ते हुए अगर भूगोल शब्द हटा दें तो ये कविताएं समकालीन नरक का इतिहास लगती हैं।"

अपने प्रभावपूर्ण काव्य-पाठ के पूर्व कवि श्रीकांत वर्मा ने कविता की प्रासंगिकता पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा कि "आज 20 वीं शताब्दी में सभ्यता के जिस दौर से हम गुजर रहे हैं उसमें कविता लिखना काफी संकट का काम हो गया है।" अपने संग्रह की कविताओं की काव्यानुभूति के बारे में श्री वर्मा ने अशोक वाजपेयी की प्रतिक्रिया से सहमति प्रकट करते हुए कहा "दरअसल ये कविताएं देखने में ऐतिहासिक लगेंगी किन्तु इनका बोध अपने समय का है। मैंने इन कविताओं में मनुष्य की आत्मा को, उसकी पराजय को, उसकी मृत्यु को एक कालातीत सत्य में देखने की कोशिश की है, जो इतिहास की खोहों में छिपे हैं। मैंने इन कविताओं में उस परम्परा को खोजने की कोशिश की है जो वाल्मीकि कालिदास, तुलसीदास में निहित है। इन कविताओं में जीवन के कुछ सत्य हैं जो कविताओं की शक्ल में बिखर गये हैं जिन्हें मैंने पकड़ना चाहा है। किन्तु ये कविताएं ऐतिहासिक नहीं हैं। इतिहास के ये पात्र तो माध्यम भर हैं।" बाद में श्रीकांत वर्मा ने संग्रह की 20 महत्वपूर्ण कविताओं का प्रभावशाली पाठ किया।

समारोह के अध्यक्ष वरिष्ठ पत्रकार एवं चिंतक श्री शामलाल ने श्रीकांत वर्मा की कविताओं के परिप्रेक्ष्य में धूमिल की एक कविता का उदाहरण देते हुए कहा कि "कविताओं में सत्य टूट-टूट कर अनेक कविताओं में बिखर गया है।" □

डा. अरविन्द कुमार त्रिपाठी



आजकल

आधुनिक साहित्य
एवं
संस्कृति का संवाहक मासिक

संपादक
नरेन्द्र सिन्हा

सहायक संपादक
प्रवीण उपाध्याय

उप-संपादक
राधेश्याम भारद्वाज

व्यापार व्यवस्थापक : लेखराज बत्रा

सहायक व्यापार व्यवस्थापक : एडवर्ड बेक

सहायक निदेशक (प्रकाशन) : आर. एस. मुंजाल

आवरण सज्जा : गुरचरण अरोड़ा

वर्ष : 40; अंक : 12; पूर्णांक : 488; अप्रैल : 1985
(चैत्र-वैशाख 1907)

3. **सम्पादकीय :** अमृत बांटता रहा है पंजाब

लेख

4. स्वतंत्रता आंदोलन : पंजाब का अवदान — **डा. मनमोहन सहगल**
8. पंजाब की कलम से लिखी : समकालीन हिन्दी कविता — **प्रताप सहगल**
15. हाल मुरीदों का कहना··· — **डा. रणवीर रांग्रा**
23. पंजाब का उर्दू काव्य साहित्य को अवदान — **आज़ाद गुलाटी**
27. राजेन्द्र सिंह बेदी-कुछ संस्मरण — **इन्द्रजीत लाल**
28. पंजाब में रचित भक्ति साहित्य··· — **डा. नरेश**
39. कथाकार भीष्म साहनी से बातचीत — **वेद प्रकाश अरोड़ा**
46. पंजाब समृद्धि के पथ पर सबसे आगे — **क्षितीश वेदालंकार**
50. पंजाब का हिन्दी रंगमंच — **जयदेव तनेजा**
42. अपनी तलाश में फिक्र तौंसवी (व्यंग) — **फिक्र तौंसवी**
58. आदि ग्रन्थ : दिव्य प्रेम का काव्य — **लोचन बख्शी**

कहानियां

12. एक कहानी का तख़लीकी अमल — **अमृता प्रीतम**
19. दूसरी औरत होने का सुख — **इन्दु बाली**
53. थके-हारे — **पृथ्वीराज मोंगा**

35. **कविताएं**

डा. नरेन्द्र मोहन, प्रभजोत कौर, स. स. मीशा, डा. रविन्द्र, श्रीमती ज्योति देव, फूलचन्द मानव, केदारनाथ कोमल, सत्यपाल चुघ और विश्वनाथ गुप्त।

इसके अतिरिक्त पुस्तक समीक्षा, वातायन, रंगमंच आदि अन्य नियमित स्तम्भ।



आजकल के दिसम्बर, 84 और जनवरी अंक मेरे सामने हैं। 'आजकल' साहित्यिक हलचल में सभी भाषाओं और अलग-अलग प्रांतों की साहित्यिक गतिविधियों का एहसास एवं समन्वय की भावना को लेकर चलता है। हिंदी के साथ-साथ अन्य सभी भाषाओं में भी समुद्र की गम्भीरता है, मुझे ऐसा ही लगता है।

दिसम्बर अंक की कहानी 'वैतरणी के पार' जहां युवा पीढ़ी की संकीर्ण मानसिकता पर कुठाराघात करती है और लोलुप मानसिकता को उजागर करती है वहीं जनवरी के अंक में प्रकाशित कहानी 'ज़िन्दा मकबरे' संस्कृति के पुर्नजागरण की कहानी है। आज समाज को ऐसी ही कहानियां चाहिए। बुजुर्गों का सम्मान और पारिवारिक लगाव हमारी सभ्यता का संचित धन है। ऐसी सुसंस्कृत कहानियों के लिए 'आजकल' और लेखक बधाई के पात्र हैं।

—सुधा गोयल, बुलन्दशहर

जनवरी, 85 का 'आजकल' देखा। प्रो. जी. सुन्दर रेड्डी का लेख 'तेलुगु भाषा : उद्भव और विकास' बहुत अच्छा लगा। लेखक को इस स्तंभ के माध्यम से मेरी हार्दिक बधाइयां भेजें।

दक्षिण की चारों मुख्य भाषाओं पर इसी प्रकार लेख छापकर विहगावलोकन करवाया जा सकता है। हिंदी-सेवा में 'आजकल' की केन्द्रीय भूमिका बनती जा रही है। बधाई।

—मुरारी लाल शर्मा, हरिद्वार

'दिसम्बर' अंक में डॉ. राजेन्द्रप्रसाद पर श्री सिद्धेश्वर प्रसाद का लेख व अन्य सामग्री देखी-पढ़ी। सामग्री सुरुचिपूर्ण है। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी पर अच्छा होता कि उनकी शताब्दी—संदर्भ में आजकल एक पूरा विशेषांक देता।

'आजकल' अपनी परम्परा के अनुसार दलबंदी के पूर्वा-ग्रहों से मुक्त नये विषयों एवं सामयिक संदर्भों पर ताजा सामग्री देकर अपनी पहचान कायम कर चुका है।

—डा. विश्वमावन देवलिया, जयपुर

'जनवरी 85,' के सम्पादकीय में सामयिक हालातों को देखते हुए जन-जन के हृदय में बसे नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की स्मृति तथा उनके विचारों को सम्प्रेषित करने के लिए कोटिशः बधाई। आज जिस तरह से घटनाक्रम चल रहा है, नेताजी जैसी दृढ़ता और त्याग की जरूरत देश को है।

'मध्य प्रदेश की आदिवासी गोंड संस्कृति' जानकारी युक्त लेख था। इस प्रकार के ज्ञानवर्धक लेखों की और अपेक्षा है।

'ज़िंदा मकबरे' का एक-एक लफ्ज हकीकत बयान करता है। पूर्व और पश्चिम के अंतर को स्पष्ट करती यह कहानी, हिन्दुस्तान की संस्कृति को उस ऊंचे स्थान पर बैठा देती है जहां पश्चिम की भौतिकवादी संस्कृति सोच भी नहीं सकती।

—प्रकाश पालीवाल, अकलतरा (म. प्र.)

जनवरी, 85 का 'आजकल' अंक पढ़ा। नेताजी से सम्बद्ध संपादकीय लेख उपयुक्त एवं प्रेरक लगा। देव कृष्ण व्यास का 'गांधी जी से प्रेरित हिन्दी पत्रकारिता' काफी सूचनाएं संजोए है। पर बहुतेरी पत्रिकाओं का सम्बन्ध इस लेख से न हो पाना आश्चर्य सा लगता है। उदाहरण के लिए विद्वान लेखक ने गया से प्रकाशित 'चिनगारी' पत्रिका का तो उल्लेख किया पर 'बागी' पत्रिका जिस परेशानी और जिंदादिली का प्रमाण थी, उसका इस लेख में न आना अन्याय-सा लगता है।

डा. श्याम सिंह शशि का लेख-'अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तक मेला' में पुस्तकों के बीच भारतीय पुस्तकों के स्थान के सम्बन्ध में सही जानकारी दी गई है। अन्य लेख भी अच्छे हैं। 'भूख' कहानी बहुत कमजोर लगी। वैसे 'ज़िन्दा मकबरे' बाला दुबे की कहानी बहुत अच्छी रही। **—रामकृष्ण, हजारीबाग**

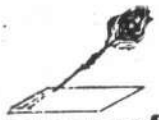
आजकल का जनवरी अंक बड़ा पसन्द आया—पीतवर्णी आवरण-सज्जा से लेकर आन्तरिक सामग्री तक।

इस अंक का संपादकीय बड़ा उपयुक्त, औचित्यपूर्ण, अवसरानुकूल उद्बोधन रहा—त्याग और बलिदान के प्रेरणाप्रद प्रतीक, राष्ट्रभावना और राष्ट्रप्रेम की जीवन्त मूर्ति, मातृभूमि की आजादी के दीवाने सुभाषचन्द्र बोस को स्मरण कर आपने लुप्त हो रही सुप्तप्राय राष्ट्रीय भावना को झकझोर कर जगाया है। राधेश्याम उपाध्यायः का 'नारी जो इस्पात से बनी थी' बेहद पसन्द आया और फिर स्वयं श्रीमती इंदिरा गांधी का डाक्टर की मानव उपाधि से सम्मानित होने के अवसर पर आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में दिया गया भाषण काफी महत्वपूर्ण, गंभीर और बोधपूर्ण रहा।

'गांधीजी से प्रेरित हिन्दी पत्रकारिता,' 'पंजाबी कहानियों का मूल्यांकन', 'बुद्ध की प्रांसगिकता',—लेख काफी पसन्द आये और फिर डा. श्यामसिंह शशि का अनुभूतिपरक संवेदनशील विवरण भी बहुत पसन्द आया। नरेन्द्र सिन्हा द्वारा 'मोहतरमा' की समीक्षा भी काफी गंभीर, दायित्वपूर्ण, संतुलित, तथ्यपरक लगी। अन्य समीक्षाएं भी पूर्वाग्रहमुक्त रहीं। कविताएं सभी अपने ढंग की आस्वादनीय सामग्री रहीं पर मुझे अवध किशोर का गीत और भगवती प्रसाद द्विवेदी का 'गांव-गीत' विशेष पसन्द आया।

कहानियों में 'भूख' तो अच्छी लगी ही पर उससे बहुत अच्छी लगी बाला दुबे की 'जिन्दा मकबरे'। 'जिन्दा मकबरे' निश्चय ही एक उत्कृष्ट रचना है, एवं सर्वांशतः सफल सशक्त जीवन्त कहानी।

—रवीन्द्रनाथ ओझा, बेतिया, बिहार



सम्पादकीय

अमृत बांटता रहा है पंजाब

पंजाब के बारे में सोचने पर शिव याद आते हैं, समुद्र-मंथन की कथा याद आती है। समुद्र-मंथन से जब अमृत निकला तो विष्णु ले भागे, जब विष निकला तो उसे अपने कंठ में धारण किया शिव ने। इस प्रकार वह नीलकंठ बन गए। पंजाब भी, प्राचीन काल से ही इन्द्रधनुषी संस्कृति के रूप में अमृत पूरे देश को बांटता रहा है, और स्वयं गरल-पान करता रहा है।

दूसरी उपमा भी शिव से संबंधित है, उनकी जटा से निःसृत अमृत-प्रवाहिनी गंगा से। जब भगीरथ देव लोक से गंगा को लेकर चले तो उनमें इतना वेग था कि उसे रोकना किसी के लिए सम्भव नहीं था। वह वेग सर्वनाशी था, उससे कल्याण की आशा नहीं की जा सकती थी। शिव ने अपनी जटा फैलाकर वह वेग रोका और फिर उनकी जटा से गंगामृत की धारा बही तो उससे राजा सगर के सौ पुत्रों को मोक्ष प्राप्त हुआ। तो पंजाब शिव की जटा है जो अमृत बांटता रहा है, देश को संजीवनी पिलाता रहा है।

आर्य यहां के मूल निवासी थे या कहीं बाहर से आए थे, इस बारे में विद्वान एकमत नहीं हैं। जयशंकर प्रसाद मात्र कवि ही नहीं, इतिहासवेत्ता, पुरातत्ववेत्ता भी थे। उन्होंने बड़े निश्चयात्मक शब्दों में अपने उद्‌गार प्रकट किए हैं – "हमारी जन्मभूमि थी यहीं, कहीं से हम आए थे नहीं।" इकबाल ने गंगा के किनारे कारवां उतरने की बात की है। पता नहीं, वह किन कारवांओं की बात कर रहे थे। यदि उनका मंतव्य आर्यों से था, तो वे कारवां गंगा किनारे उतरने से पहले पंजाब की नदियों के किनारे उतरे होंगे। सम्भव है, आर्य भी यहां अन्य प्रजातियों की तरह आक्रामकों के रूप में या नयी ज़मीन और नए चरागाह खोजते हुए, यहां आए हों। यदि आर्यों की बात छोड़ भी दी जाए तो पंजाब ने शकों, हूणों, सीथियनों, पार्थियनों और बाद में इस्लाम धर्मावलम्बियों के आक्रमण अपनी छाती पर झेलकर उस विष को पचाया है और इस प्रक्रिया में उन्हें यहां की संस्कृति का अवदान देकर एक ऐसी संस्कृति की रचना की है जिसकी सामासिकता पर हमें गर्व है।

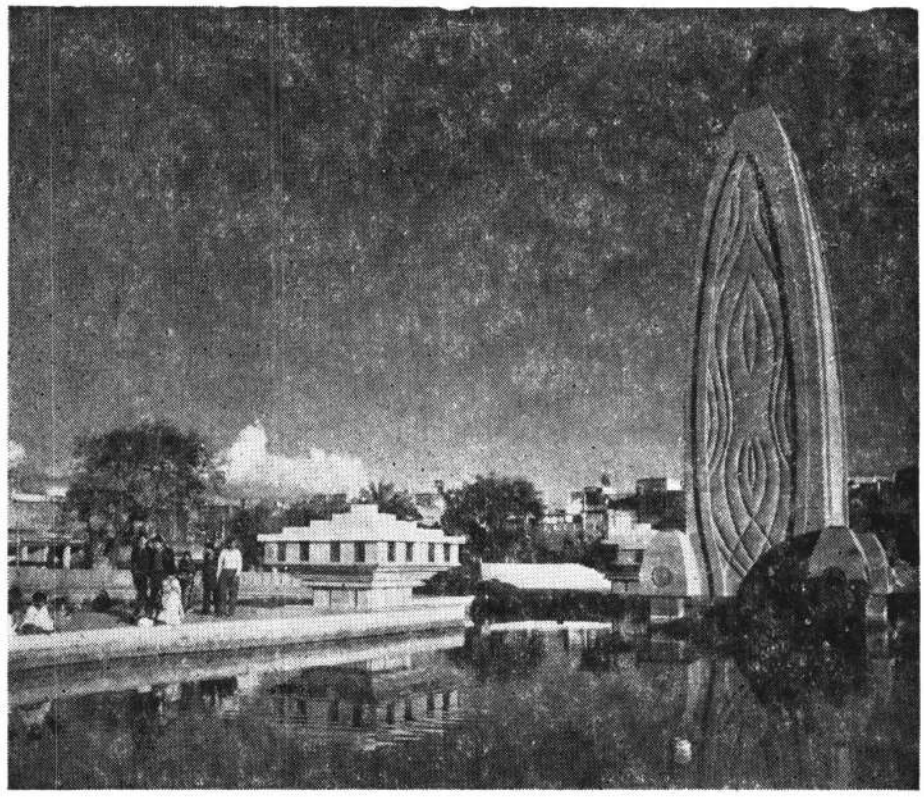
तब से सामासिकता की यह धारा देश के अन्य भागों की तरह पंजाब में भी अविरल बहती रही है। इसी सामासिकता की बदौलत पंजाब की धरती पर गांधार कला विकसित हुई, मध्य काल के भक्ति आंदोलन के दौरान देश को नानक, रविदास बाबा फ़रीद, बुल्लेशाह और वारिसशाह जैसे संतों और सूफियों का अवदान मिला जिन्होंने जात-पांत और ऊंच-नीच के बंधनों को नकार कर हर इंसान में भगवान का दर्शन कराया। आधुनिक काल में भी इसी सामासिकता के बल पर पंजाब ने देश को यदि लाला लाजपतराय और भगतसिंह जैसे स्वतंत्रता की बलि-वेदी पर मर मिटने वाले दीवाने दिए तो बीसियों चोटी के साहित्यकार और कलाकार जिन्होंने न केवल देश में, बल्कि विदेशों में भी हमारा सिर ऊंचा किया है।

लेकिन, मानव प्रेम का संदेश देनेवाला वही पंजाब आज एक गहरे सांस्कृतिक संकट के दौर से गुजर रहा है। सच पूछें तो पंजाब की समस्या राजनीतिक से कहीं अधिक सांस्कृतिक है जिससे हमारी सामासिकता के आगे एक बड़ा-सा प्रश्न-चिह्न लग गया है। धर्मांधता और संकीर्णता की जो ज्वाला वहां हाल में जली, उसे सुलगाने में साम्राज्यवादी शक्तियों का हाथ था। यह ज्वाला अभी पूरी तरह शमित नहीं हुई है, लेकिन संतोष की बात है, स्थिति सामान्य होती जा रही है। कुहासा छंटने लगा है और पंजाबवासी आतकवादियों और साम्राज्यवादियों के खतरनाक खेल को समझने लगे हैं। वह जानते हैं कि यदि इनकी साज़िश सफल हो गई तो वह सामासिक संस्कृति जिसके निर्माण में पंजाब का अप्रतिम योगदान रहा है, नष्ट हो जाएगी। शेष देश-वासियों की तरह उनकी भी यही आंतरिक कामना है कि इस देश के विभिन्न राज्यों, विभिन्न जातियों, विभिन्न वर्गों के लोग पहले की ही तरह परस्पर सद्‌भाव के साथ भाई-भाई की तरह रहकर देश को समृद्ध बनाएं। निश्चय ही उनकी और शेष देश की यह कामना सफल होगी और समस्या सद्‌भावपूर्ण ढंग से हल होकर रहेंगी। इसके लिए जो प्रयास किए जा रहे हैं, उनमें शीघ्र ही सफलता प्राप्त होगी और वह सांस्कृतिक धारा जो पंजाब से अविरल भाव से निःसृत होती रही है, बार-बार नानक रविदास, बाबा फ़रीद और वारिसशाह जैसे मानव-धर्मियों को जन्म देती रहेगी। □

धनु सु कागदु कलम धनु धनु भांडा धनु मसु।
धनु लेखारी नानका जिनि नामु लिखाइआ सचु।।

—गुरु नानक वाणी

धन्य वह काग़ज धन्य वह कलम है, नानक का कथन है
धन्य वह लेखक है जिन्होंने लिखा है उसका सत्य नाम।



जलियांवाला बाग
शहीद स्मारक

स्वतंत्रता आंदोलन : पंजाब का अवदान

□ डा. मनमोहन सहगल

भारत की स्वातन्त्र्य-बलिवेदी पर सर्वाधिक आहुतियां देने वाला पंजाब सन् 1907 ई. तक लगभग सुप्तावस्था में ही था। स्वतन्त्रता के लिए इस प्रान्त में किसी प्रकार की विशेष जागृति का दूर तक अभाव एक विडम्बना ही है। संघर्ष, टकराहट, बलिदान और सामन्ती अत्याचार का सामना करने में पंजाब सन् 1907 के बाद तो अतुलनीय है, किन्तु इससे पूर्व इतिहास साक्षी है, पंजाब में अंग्रेजी साम्राज्य के विरोध की अनिच्छा बनी रही। यहां तक कि सन् 1857 ई. में जबकि स्वतन्त्रता-संग्राम की ज्वाला पूरे भारत को लीलने को थी, पंजाब उदासीन था। इस तथ्य के कारण कुछ भी हो सकते हैं, परन्तु वास्तविकता यही है कि पंजाब की रियासती जनता राजाओं/शासकों के दैवी अधिकारों में कुछ इतना अधिक विश्वास रखती थी, कि राजकीय अन्याय, अनाचार और अत्याचार के विरुद्ध मुंह खोलकर वह पाप का कलंक लेने से बचती थी। देशी-विदेशी शासक उनके लिए बस राजा थे, ग्राह्य-पूज्य-सत्कार्य-सर्वोपरि। जैसे देवता का कोप भी नत-सिर स्वीकार किया जाना मजबूरी थी, वैसे राज-दण्ड का अत्याचार भी सींग-पूंछ हिलाए बगैर शिरोधार्य होता था। यह तो भला हो शासकों का—प्रान्त के कृषक-वर्ग के साथ अन्याय करके उन्होंने पंजाबियों में सोये सिंह को जगाने की भूल कर दी।

सन् 1907 में पंजाब में कृषकों के साथ हुए अन्याय-अनाचार के विरुद्ध कृषक आन्दोलन चला। अजीत सिंह, सूफी अम्बा प्रसाद, लाला लाजपतराय प्रभृति नेताओं ने इस आन्दोलन में बढ़-चढ़कर भाग लिया। परिणामतः अजीत सिंह और लाजपत-राय को बंदी बनाकर देश से बाहर भेज दिया गया। लगभग 6-7 महीने उन्हें स्वदेश में प्रवेश की भी अनुमति नहीं दी गई। इसी बीच लाला हरदयाल ने अमरीका में गदर पार्टी को जन्म दिया। किशन सिंह, करतार सिंह सराभा, दोनों पंजाबियों ने पार्टी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पार्टी की स्थापना देश से बाहर हुई थी, देश में पार्टी के सक्रिय सदस्यों को घुसने नहीं

दिया गया था। कामा गाटा मारू के देश पहुंचने पर यात्रियों को उससे उतरने तक की अनुज्ञा न दी गई, बलात् उतरने पर गोलियों से उनका स्वागत किया गया। जहाज पर अधिकतर पंजाबी थे। सहज ही उन्हें इस प्रकार के व्यवहार पर क्षोभ हुआ। पंजाब प्रान्त में गदर-पार्टी के साथ इस दुर्व्यवहार एवं कठोर दृष्टि के परिणामस्वरूप अनेक राजनीतिक दल अस्तित्व में आए। बब्बर अकाली, कीर्ति किसान पार्टी, नौजवान सभा आदि दलों ने पंजाब के लोक-मानस में राष्ट्रीय भावना पैदा की, जनता में देश की समस्याओं और स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्रति जागृति पैदा की। वरन् यों कहना अधिक समीचीन होगा कि इन दलों की सक्रियता के कारण पंजाब की साधारण जनता देश की आजादी के प्रश्न को समझने लगी। साम्राज्यवादी शक्तियों के चंगुल से निकलने के लिए कटिबद्ध होने लगी। सच तो यह है कि राजनीतिक क्रान्ति आन्दोलन का जो केन्द्र अब तक बंगाल में स्थित था, धीरे-धीरे पंजाब में बनने लगा।

नौ-आबादियों के बिल, रौलट ऐक्ट आदि के विरुद्ध पंजाब में तीखी प्रतिक्रियाएं हुई जिसके परिणामस्वरूप पंजाब के तत्कालीन नेताओं डा. सत्पाल, डा किचलू, दुनीचंद अम्बालवी आदि को जेल-यात्राएं करनी पड़ीं। नेताओं की गिरफ्तारी ने पंजाब की जलती में तेल का काम किया। सन् 1919 ई. के अप्रैल मास की 13 तारीख को पंजाबियों ने अपना क्षोभ प्रकट करने के लिए अमृतसर के जलियांवाला बाग में एक जन-सभा का आयोजन किया। अंग्रेज सरकार के जनरल डायर सरीखे अधिकारियों ने पंजाब के आन्दोलन को कुचल डालने के लिए महत शक्ति प्रयोग की योजना बना डाली। और फिर उक्त जन-सभा पर डायर की आज्ञा से गोलियां बरसाई गईं,



लाला हरदयाल



करतार सिंह सराभा

स्त्री-पुरुषों को भुनगों की तरह मार दिया गया और गोलीबारी तब तक बंद नहीं की गई, जब तक कि फायरिंग स्क्वाड्स के पास गोलियां समाप्त नहीं हो गईं।

जलियांवाला बाग के इस हत्याकांड ने देश में ही नहीं, विदेशों में भी त्राहि-त्राहि मचा दी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेता पंजाब की ओर भागे, किन्तु गांधीजी, पंडित नेहरू आदि चोटी के नेताओं को पंजाब-प्रवेश की ही अनुमति नहीं दी गई। पंजाब सुलगता रहा—नेता जेल में, बड़े नेताओं को सान्त्वना देने के लिए भी पंजाब आने की अनुज्ञा नहीं और जलियांवाला बाग में जिन परिवारों के सैकड़ों लोग शहीद हो गए, उनकी कोई सुनवाई नहीं। ऐसे में गौरवशाली पंजाबी परम्पराओं को आघात पहुंचते देखकर, वीर पंजाबी सपूत ऊधम सिंह ने खुले-आम डायर की हत्या करके जलियांवाला बाग काण्ड का प्रतिशोध लेने की घोषणा कर दी। ब्रिटिश शासन ने इस सिंहनाद से घबरा कर डायर को वापिस बुला लिया और ऊधम सिंह को पकड़ने के लिए ज़ोरदार भाग-दौड़ होने लगी। किन्तु भारत मां का वह सपूत राम मुहम्मद सिंह आज़ाद बनकर सुनाम से ऐसा गायब हुआ कि लंदन में गवर्नर ओड्वायर को गोली से उड़ा देने के दिन ही उसका पता चला। डायर तब तक मर चुका था, उस समय का पंजाब का गवर्नर ओड्वायर ऊधम सिंह की गोली का निशाना बना।

गांधीजी के असहयोग आन्दोलन, नागरिक आज्ञाभंग आन्दोलन एवं साईमन कमिशन आगमन पर किए गए विरोध-प्रदर्शनों में पंजाब की भूमिका की उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह सही है कि उक्त आन्दोलनों का क्षेत्रीय केन्द्र पंजाब नहीं



लाला लाजपत राय

था, तथापि पंजाब ने बढ़-चढ़कर उनमें भाग लिया और सन् 1926 ई. तक आते-आते पंजाब का स्वातन्त्र्य आन्दोलन, जो अब तक लोगों की चेतना को झंझोड़ रहा था, ग्रामीण जनता में फैल गया। अब पंजाब के नगरों और गांवों, दोनों में पूर्ण जागृति आ चुकी थी, जिसने भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की नीवें हिला दीं।

गदर पार्टी के प्रभाव से जो दल अस्तित्व में आए थे, उन्होंने पंजाब में आज़ादी के आन्दोलन को कुछ-कुछ सशस्त्र बना दिया था। पंजाब अपनी संस्कृति और परम्पराओं के कारण गांधीजी के अहिंसक आन्दोलन में पूरा विश्वास नहीं बना सका था। नौजवान सभा के युवकों ने गर्मदल की मान्यताओं के साथ गोली दागने का अभ्यास भी शुरू कर दिया था। सन् 1927 ई. में जब साईमन कमीशन लाहौर पहुंचा तो लाला लाजपतराय के नेतृत्व में जनता ने कमीशन का विरोध किया। 'कमीशन—में गोबैक' के नारे लगाए गए। पुलिस जब भीड़ पर काबू नहीं पा सकी तो पुलिस कप्तान सांड्र्स ने सिर-तोड़ लाठी चार्ज की आज्ञा दी। लाला लाजपतराय पर भी लाठी की कुछ चोटें लगीं। घावों की ताब न लाकर पंजाब का 'केसरी', यह लोकप्रिय नेता बलिदान को प्राप्त हुआ। मरते हुए पंजाब-केसरी ने कहा था 'मेरे शरीर पर पड़ी लाठियों की चोटें अंग्रेजी साम्राज्य के कफन पर लगने वाली कीलें साबित होंगी। इतिहास साक्षी है कि लालाजी की मृत्यु के बाद पंजाब में स्वतन्त्रता आन्दोलन इतना तेज़ हो गया कि अन्ततः सन् 1947 ई. में पूर्ण स्वराज पाकर ही शांति हुई। ठीक है इसके लिए पंजाब को ही सर्वाधिक कुर्बानी देनी पड़ी, अपने अंग तक कटवा दिए, किन्तु स्वतन्त्रता की मांग जो पंजाब की धरती पर ही की गई थी, परवान चढ़ी।

पूर्ण स्वतंत्रता की यह मांग सन् 1929 ई. को लाहौर कांग्रेस सेशन में पंडित जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में की गई थी। कांग्रेस सेशन में पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुआ था, और सेशन में अंग्रेज सरकार को स्पष्ट कर दिया गया था कि पूर्ण-स्वतन्त्रता से कम किसी भी बात पर उनसे कोई समझौता नहीं किया जा सकेगा। लाला लाजपतराय पर लाठियां बरसाने वाले पुलिस कप्तान सांड्र्स की हत्या करने का बीड़ा नौजवान सभा ने उठाया। सभा के युवा सदस्यों ने लाहौर में किसी दूसरे पुलिस कप्तान को सांड्र्स समझ कर गोली से उड़ा दिया। नौजवान सभा के इस साहसिक कार्य से सरकार चौकन्नी हो गई और नीतिपूर्वक गांधीजी पर दबाव डाला जाने लगा कि वे गर्मदल सदस्यों को मार-धाड़ से रोकें। यथासम्भव गांधीजी के प्रभाव में आकर ही सरदार भगत सिंह ने अपना बलिदान देना स्वीकार कर लिया। नौजवान सभा के परम सक्रिय इस सदस्य ने अंग्रेजी शासन के बंद कानों तक अपनी आवाज़ पहुंचाने के लिए लाहौर असेम्बली की दीर्घा से खाली सीटों की ओर बम फेंका। धमाके से पूरी इमारत हिल गई। सरदार भगत सिंह बम-काण्ड के बाद सुविधापूर्वक सुरक्षित निकल सकते थे। किन्तु उनका लक्ष्य अपनी कुर्बानी देकर अंग्रेजों के बंद कान और आंखें खोलने का प्रयास करना था। अतः उन्होंने बंदी होना स्वीकार किया और अन्ततः अपनी बात कहते-कहते फांसी का फंदा खुशी से चूम गए।

लाला लाजपतराय तथा सरदार भगत सिंह के बलिदान



सरदार भगत सिंह

पंजाब की धमनियों में बिजली की लौ बनकर बहने लगे। इसने अनेक स्थानों पर ज़ोरदार मोर्चों को जन्म दिया। साथ ही पंजाब की देसी रियासतों की जनता स्वातंत्र्य आंदोलन में कूद पड़ी। इसका सबसे बड़ा लाभ स्वतंत्रता आन्दोलन चलाने वाले मुख्य दल कांग्रेस को हुआ। पंजाबी रियासतों में भी उनका आन्दोलन बल पकड़ने लगा।

लाहौर का हरशा छीना मोर्चा, लायलपुर का नीलीबार मोर्चा, होशियारपुर तथा लुधियाना के मोर्चे, सब बगावत के शंखनाद थे। इनसे पंजाब के भीतर और बाहर स्वतन्त्रता संग्राम में तेज़ी आई। ऐसा प्रतीत होने लगा कि अंग्रेजों को भारत छोड़कर जाना ही होगा—तभी मुहम्मद अली जिन्नाह तथा मुस्लिम लीग (पार्टी) ने अपने अधिकारों की अलग मांग पेश करनी शुरू कर दी। बहती गंगा के हाथ धो लेने की उनकी प्रवृत्ति ने जहां आज़ादी की प्राप्ति में विलम्ब पैदा किया वहीं मुस्लिम जाति के नाम पर अंग्रेजों से अलग प्रदेश हासिल करने की साजिश भी सफल हुई। परिणामतः सन् 1947 में देश का विभाजन हुआ—आज़ादी का बहुत बड़ा मोल भारतीयों को अपने ही भाई-बंधुओं के विश्वासघात के कारण चुकाना पड़ा।

देसी रियासतों में सबसे बड़ा राजनीतिक दल प्रजा मंडल के नाम से उभरा। ज्ञानी जैल सिंह, जो आज हमारे राष्ट्रपति हैं, इसी दल के मुखिया थे। उनके अतिरिक्त वृषभानु, जागीरसिंह जोगा, हरचंद सिंह जेजी, सेवा सिंह ठीकरीवाला आदि व्यक्तियों ने प्रजामंडल को दिशा दी। पंजाब में समाजवादी एवं साम्यवादी दृष्टि का उदय वास्तव में प्रजामंडल की देन थी। मंडल ने सोहन सिंह भकना, सोहनसिंह जोश, हरिसिंह, ईशरसिंह, भाई रणधीर सिंह सरीखे नेतृत्व प्रदान किए।

द्वितीय महायुद्ध के समय अंगरेजों को पुनः पंजाब के वीरों की आवश्यकता हुई। इस बार प्रथम युद्ध की अपेक्षा उन्हें पंजाब से कम संख्या में भर्ती प्राप्त हुई। सन् 1942 के आन्दोलनों ने पूरे भारत को हिला दिया। अंगरेजों ने भारतीयों से सौदे जैसी भावना से कुछ फैसला करना चाहा। सर स्टैफर्ड क्रिप्स को एक मिशन का मुखिया बनाकर भारत भेजा गया। कांग्रेस के नेताओं और मिशन में शायद कुछ निर्णय हो ही जाता, किन्तु मुहम्मद अली जिन्नाह और उनकी पार्टी मुस्लिम लीग ने फिर अडंगा लगाया। परिणामतः कांग्रेसी नेताओं को अपना कार्यक्षेत्र पंजाब को बनाना पड़ा। पंडित नेहरू ने बार-बार पंजाब की यात्रा की, रियासतों में आन्दोलन को तीखा करने के लिए तथा मुस्लिम लीग के प्रभाव को घटाने के लिए लुधियाना, भटिंडा लाहौर में पंडित नेहरू ने बड़ी-बड़ी सभाओं को सम्बोधित किया। इससे लोगों का ध्यान लीग की बातों की अपेक्षा स्वातन्त्र्य की प्राप्ति पर लगाया गया। कैबिनेट मिशन के आगमन से भारत में अन्तरिम सरकार का निर्णय भी लीग ही के कारण ढीला पड़ा और युद्धोपरांत दिए गए वचनों के अनुसार भारत को पूर्ण स्वराज देते समय देश की धरती में से दो बड़े खंड पाकिस्तान के नाम से काट कर अलग कर दिए गए।

स्वतन्त्रता आई, पंजाब लंगड़ाया। जब 15 अगस्त के स्वर्ण-विहान का स्वागत देश के सभी प्रांतों में हर्षोल्लास से किया जा रहा था, तब पंजाब अंग-भंग कर विलाप कर रहा था। पंजाब की जनता दोनों ओर बट और कट रही थी, मृत्यु का नंगा नाच हो रहा था। मनुष्य पशु बनकर एक-दूसरे का रक्त-पात और रक्तपान कर रहे थे। वह दर्द पंजाब की उन आंखों में आजभी देखा जा सकता है, जो अगस्त 1947 ई. में हत्याकांड विभाजन और स्वदेश छोड़कर देश की यात्रा करने वालों की साक्षी थी। आन्दोलन में सर्वाधिक करारी चोट करने वाला प्रांत पंजाब स्वतन्त्रता की सर्वाधिक कीमत चुकाने वाला प्रांत बना। भारत की स्वतंत्रता का अध्याय पंजाब की कुर्बानियों की भूमिका पर लिखा गया। □

हिंदी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय
पटियाला-147002

लघुकथा

मगर—और ग्राहक

□ **सदाशिव सुगन्ध**

संजीव अपनी बहन की शादी के लिए लड़का खोजने में काफी दिनो से लगा हुआ था। लेकिन बात कहीं नहीं जम रही थी। जहां लड़का पसंद होता था वहां दाम बहुत ऊंचे रहते थे और जहां दाम ठीक मिलते, वहां लड़का पसंद नहीं होता था। काफी खोजबीन के बाद पता चला कि बलदेव प्रसाद 'अखिल भारतीय दहेज हटाओ संघ' के अध्यक्ष हैं और उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि वे हिन्दुस्तान से दहेज हटाकर रहेंगे। उनके यहां एक लड़का है। खुशी-खुशी पहुंचा संजीव। लड़का काफी अच्छा था देखते ही पसंद आ गया संजीव को। दहेज की बात चली तो बलदेव प्रसाद ने दहेज लेने से साफ इन्कार कर दिया। कहा—"मुझे एक पैसा दहेज का नहीं चाहिए मगर अपनी लड़की की शादी में मैंने 30 तोला शुद्ध सोना, 300 तोला चांदी, टेलीविजन, स्कूटर और फ्रिज आदि छोटे-मोटे सामान दिये हैं जिसमें से छोटे-मोटे सामान को तो जाने दीजिये मगर—। इस मगर को संजीव पिछले तीन सालों से सुनता आ रहा था। लेकिन यहां का मगर तो काफी बड़ा था। सो उसने कुछ भी बोलना ठीक नहीं समझा। बस चुपचाप उठकर चल दिया। "भाई साहब। कुछ तो बोलिये"—एक कुशल सेल्मैन की तरह बलदेव प्रसाद ने होठों पर मुस्कान लाते हुए कहा। परन्तु ग्राहक चुपचाप बाहर निकल गया।

वर्मा स्टूडियो, भागलपुर-812001

पंजाब की कलम से लिखी :

समकालीन हिन्दी कविता

प्रताप सहगल

हिन्दी साहित्य का इतिहास मुख्यतः कविता का इतिहास है। कविता के तरह-तरह के चेहरों की पहचान करना ही इतिहास का पढ़ना है। आधुनिक दौर में अन्य साहित्यिक विधाओं के उदय के साथ हिन्दी साहित्य का फैलाव भी बढ़ा है। एक ऐसे पेड़ की तरह, जो ऊपर उठने के साथ-साथ फैलता भी जाता है। अन्य विधाओं के तेज़ी से विकास के बावजूद प्रायः कविता ही केन्द्र में रही है। हिन्दी कविता-धारा से कट-कर पंजाब में कवियों ने काव्य-सर्जना की हो, ऐसा कोई संकेत नहीं है।

हिन्दी कविता के पिछले पचास-साठ सालों पर नज़र डालें तो तीसरे-चौथे दशक में कोई बड़ा नाम उभर कर सामने नहीं आता। कहानी के क्षेत्र में प्रतिष्ठित श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'भारत की जय', 'झुकी कमान' तथा 'एशिया की विजयदशमी' जैसी कुछ कविताएं ही सामने आती हैं। श्रद्धाराम फिल्लौरी ने 'सबधर्म मुक्तावली' तथा 'शतोपदेश' के माध्यम से हिन्दी कविता को समृद्ध किया। उत्तर भारत में घर-घर में तथा मन्दिरों के घण्टों की गूंज के साथ होने वाली आरती 'जय जगदीश हरे' फिल्लौरी की ही कलम की देन है।

कालान्तर में जालन्धर तथा लाहौर में रेडियो स्टेशनों की स्थापना से ये शहर साहित्य और संस्कृति का केन्द्र बन गए। पंजाब के तथा पंजाब के बाहर से आए कवियों के प्रयासों से अन्य साहित्यिक विधाओं के साथ कविता भी तेज़ी से विकसित होने लगी। बाहर से आए कवियों में हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, पद्मसिंह कमलेश तथा जगनाथ नलिन प्रमुख थे. जबकि उपेन्द्रनाथ अश्क और देवराज दिनेश मूलतः पंजाब के ही थे, हालांकि यह भी बाद में पंजाब से बाहर चले गए। इस दृष्टि से देखा जाए तो मात्र यही दो ऐसे महत्वपूर्ण कवि थे, जिनकी रग-रग में पंजाब की संस्कृति बसती थी और साथ ही यह हिन्दी की बड़ी काव्य-धारा की पहचान भी रखते थे। नाटककार और कथाकार के रूप में प्रसिद्धि पाने के बावजूद अश्क आज भी स्वयं को मूलतः कवि ही मानते हैं और उनका कहना है कि समय के दबावों तथा साहित्यिक कुचक्रों ने उनकी कवि-प्रतिभा को खण्डित तो किया ही है, लगभग भुला सा ही दिया है। 'बरगद की बेटी', 'चांदनी रात' और 'अजगर' में उनका कवि और कथाकार एक साथ उपस्थित हुआ है जबकि उनकी दूसरी कविताओं में रोमानी भावबोध और सामाजिक सरोकार ध्वनित होते हैं, देवराज दिनेश ने व्यंग्य लिखने के बावजूद मुख्यतः अपनी पहचान एक कवि के रूप में ही अर्जित की है।

पांचवें दशक में कविता में तेज़ी से बदलाव आने लगा। इस बदलाव की एक मुख्य कड़ी 'तारसप्तक' है और इस काव्य-धारा को प्रतिष्ठा दिलाने वाले 'अज्ञेय' का पंजाब से गहरा वास्ता रहा है।

समकालीन कविता में पंजाब की कलम की पहचान सन्64 में अभिव्यक्ति-1 के प्रकाशन से रेखांकित की जा सकती है। रमेश कुन्तल मेघ, गंगा प्रसाद विमल और परेश के चण्डीगढ़ आने से यह शहर पंजाब में साहित्य का मुख्य केन्द्र बनने लगा। अभि-व्यक्ति-1 के प्रस्तावक इन्द्रनाथ मदान थे और इसका सम्पादन रमेश कुन्तल मेघ तथा गंगाप्रसाद विमल ने किया। व्यवस्था सम्पादक यश गुलाटी थे। ऐसा नहीं कि इसमें संकलित तमाम कवि पंजाब के थे। अभिव्यक्ति-1 की परिकल्पना हिन्दी की समस्त कविता के मुख्य स्वरों को एक ही मंच पर प्रस्तुत करने की दृष्टि से की गयी थी, लेकिन इस बहाने पंजाब के अनेक कवि पहली बार रेखांकित हुए। आज आलोचना के क्षेत्र में लब्ध प्रतिष्ठित रमेश कुन्तल मेघ की कविताएं इसमें सम्मिलित हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क की कविताएं भी यहां मौजूद हैं। इससे पूर्व 1963 में जगदीश चतुर्वेदी के सम्पादन में 'प्रारम्भ' छप चुका था जिसमें नरेन्द्र धीर की सत्रह कविताएं शामिल हैं। इन कवि-ताओं का स्वर आक्रोश और अनास्था का है 'बौनों का देश', 'आस्थाहीन हम' तथा 'खोखला व्यक्तित्व' आदि कविताएं इन्हीं स्वरों को ध्वनित करती हैं।

हम बौने हैं
हम सब बौने हैं
निपट बौने
मन से बौने
विश्वास से बौने
आत्मा से बौने

× × ×

अपनी कुण्ठाओं में बिलबिला रहे हैं,

बौनेपन का, कुण्ठा और नैराश्य, पलायन और हताशा का यह भाव-बोध 62 के बाद की कविता का एक मुख्य स्वर बन गया। 62 में देश पर हुए चीनी हमले ने नेहरू की शान्ति-नीतियों को विखण्डित किया और सारे देश में असुरक्षा का भाव भर गया। देश को एक ऐसे दौर से गुज़रना पड़ा, जो किसी भी भारतीय की अस्मिता को चुनौती देने वाला हो सकता था। इसी दौर में दिनकर ने 'परशुराम की प्रतीक्षा' जैसी महत्व पूर्ण कविता लिखी। पंजाब की युवा पीढ़ी का मोह भंग हुआ, उनका आक्रोश जागा और आक्रोश जन्य कविता उभरी। इस तथा दूसरे सारे दबावों के बावजूद पंजाब के कवि कहीं अपनी तो कहीं कविता की सही पहचान करने के लिए जूझते नज़र आते हैं।

पंजाब की नयी कविता की स्वपनिलता, मस्ती और स्पष्ट-वादिता इन कविताओं के माध्यम से सामने आती है। बिम्बधर्मी कविताओं की सर्जना करते हुए 'अनामिका की सांझ' कविता को रेखांकित किया जा सकता है।

सांझ नावें
डूबती हैं
हथेली पर
एक सागर उभरता है।

इनके अतिरिक्त अभिव्यक्ति के माध्यस से जिन कवियों ने हिन्दी कविता में अपना योगदान दिया, उनमें कुछ प्रमुख हैं— चन्द्रशेखर, जसवीर कौर. जितेन्द्र मोहन, तृप्ता कपूर, नरेन्द्रमोहन, पृथ्वीराज कालिया, ब्रह्मदेव भल्ला, नरेन्द्रधीर तथा सौमित्र मोहन आदि।

पैंसठ से सत्तर के बीच का हिन्दी कविता का दौर तेज़ी से बदलाव का दौर था। पंजाब के कवि कोई अपवाद नहीं थे। मोह भंग से साक्षात्कार होने के बाद उठने वाली टीस, क्षुब्धता, आशंका और झुंझलाहट इनकी कविताओं का मुख्य स्वर बन गयी। इसी दौर में मुक्तिबोध भी लिख रहे थे और जगदीश चतुर्वेदी भी, विचारधारा के स्तर पर दोनों अलग-अलग काव्य धाराओं का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। 1972 में जगदीश चतुर्वेदी ने ही 'निषेध' सम्पादित किया जिसमें दो कवि पंजाब के हैं। वे हैं सौमित्र मोहन, और कुमार विकल। सौमित्र मोहन की कविताएं कविता की टोटल फार्म को चुनौती देती कविताएं हैं। 'प्रजातन्त्र', 'महिमा', 'परिवेश' और 'घरबार' ऐसी कविताएं हैं जो फार्म के स्तर पर लुकमान अली जैसी किसी कविता की पूर्व सूचना देती हैं। अकविता आन्दोलन से जुड़े हुए सौमित्र की कविताओं में विसंगति उनकी सृजन-क्षमता के साथ घुली मिली आती है। निषेध की कुछ कविताओं में मात्र चमत्कार के लिए किए गए प्रयोग धीरे-धीरे उनकी रचनाधर्मिता का एक अविभाज्य अंग बनते गए हैं। लुकमान अली की दुनियां एक चिन्तनशील और आक्रामक बुद्धिजीवी की दुनियां है।

लुकमान अली वहां से शुरू करता है जहां कुछ भी होना रुक गया है।

× × ×

लुकमान अली ब्लैक-आउट में शब्दकोश लेकर पहरा देता है।

× × ×

लुकमान अली के लिए चीज़ें उतनी बड़ी नहीं हैं जितना उन तक पहुंचना। सरसरी तौर पर देखने में यह फिकरेबाज़ी या बयानबाजी का एक नमूना हो सकती है, लेकिन अपने पूरे परिवेश में लुकमान अली की कविता किसी भी कवि, पाठक के लिए चुनौती हो सकती है।

कुमार विकल ऐसे कवि हैं जिनके पास कविता का आक्रमक मुहावरा और सामाजिक प्रतिबद्धता दोनों हैं, 'शहर का नाम' की प्रारम्भिक पंक्तियां :

दुनियां का सबसे सुखी आदमी
सूअर
और दुःखी जानवर
आदमी

उनकी काव्य-चेतना का एक पहलू है। उनका दूसरा महत्व-पूर्ण पहलू दूसरी अनेक कविताओं में है। इनके माध्यम से वे अपने परिवेशजन्य ग़लत-सलत रिवाजों और प्रतिष्ठा द्वारा किए जा रहे शोषण पर चोट करते नज़र आते हैं। 'जनतन्त्र और मैं' कविता अंश इसी दृष्टि से देखा जा सकता है :

मैं कितना भोला हूं कि हर पांचवें साल
एक परची देकर बहला लिया जाता हूं
और वह परची मेरे पांव से दिल्ली पहुंच जाती
जो कालान्तर में मुझसे बहुत दूर चली जाती है
और मैं पीछे—
मतदाताओं की सूची में केवल एक क्रम संख्या रह जाता हूं।

इनके अतिरिक्त पंजाब में लम्बे समय से बसे परेश द्वारा दिया गया योगदान भी रेखांकित किया जा सकता है। सातवें दशक में इनके अतिरिक्त मोना गुलाटी का उल्लेख किया जा सकता है, जो कुण्ठाओं और विसंगतिजन्य कविता के लिए चर्चा के केन्द्र में रही। सातवें और आठवें दशक में पंजाब की कलम में तेज़ी से विस्तार आया। विस्तार के साथ फैलाव भी और ऊंचाई भी। विचार कविता का सूत्रपात करने में प्रमुख हाथ पंजाब के कवियों का ही रहा है, जिनमें नरेन्द्रमोहन और बलदेव वंशी प्रमुख हैं। दूसरे तमाम कवियों के साथ इन्होंने विचार की अन्विति को कविता का अनिवार्य धर्म माना। बिम्बधर्मिता से विचार धर्मिता की ओर आए इन कवियों ने हिन्दी काव्य-धारा

को एक नया आयाम देने का प्रयास किया। नरेन्द्रमोहन की कविता कभी सामाजिक विद्रूपताओं की मोर्चाबन्दी के खिलाफ लड़ती है तो कभी भाषा के संवेदनहीन हो जाने की प्रक्रिया पर चिन्ता व्यक्त करती है। कभी उनकी कविता के केन्द्र में सत्ता का शोषणकारी रूप आ जाता है तो कभी बच्चा। कभी वे साम्प्रदायिकता के तनावों और उससे पैदा हुए विखंडन की ओर आगाह करते हैं तो कभी साहित्य की दुनियां में फैले वितण्डावादों पर चोट करते हैं। नरेन्द्रमोहन का कवि-व्यक्तित्व लम्बी कविताओं के माध्यम से सामने है। विभाजन की त्रासदी से सामना करती उनकी लम्बी कविता 'एक अग्निकांड: जगहें बदलता' तथा पंजाब की जलती समस्या को झेलती 'एक अदद सपने के लिए' का यह अंश गवाह है :

कहां से आ गिरी है लाश
बीच चौराहे में
कहां से आ रही हैं गोलियां
लाश गिरी तो कैसे
गोलियां चलीं तो कहां से
आदमी कब लाश बन जाता है
लाश कब आदमी
इन मुद्दों पर लम्बी बहसें कर रही है
पढ़ने लिखने वाली हाकिम जमात
किले के बाहर
किले के अन्दर

बलदेव वंशी का कविता संसार 'दर्शक दीर्घा से' 'उपनगर में वापिसी' 'अंधेरे के बावजूद' तथा 'कहीं कोई आवाज़ नहीं' के माध्यम से हमारे सामने है। इनके अतिरिक्त 'बच्चे की दुनियां' में बलदेव वंशी ने बच्चे की मनःस्थितियों और परिवेशगत दबावों से बनती-बिगड़ती मानसिकता को पकड़ा है। 'बच्चा और भेड़िये' इस दृष्टि से उनकी सर्वाधिक सशक्त कविता है। बलदेव वंशी की कविताओं में विचार और संवेदन एक दूसरे से गुथे-गुथे उभरते हैं। कुमार विकल और नरेन्द्र मोहन की कविता जहां व्यवस्था को सम्बोधित है, बलदेव वंशी की कविता के सरोकार ज्यादा फैले हुए हैं।

आठवें दशक और नवें दशक के प्रारम्भिक दौर में अनेक कवि उभर कर आए हैं जिनकी कलम हिन्दी कविता को समृद्ध करने के लिए समर्पित है। इनमें कुछ महत्वपूर्ण, चर्चित और कुछ अपेक्षाकृत कम चर्चित कवि हैं : फूलचन्द मानव, अतुलवीर अरोड़ा, तेजी ग्रोवर, अल्बर्ट अर्नेस्ट, जगमोहन चोपड़ा, मोहन सपरा, गीतावडेरा, चन्द्रशेखर, जितेन्द्र मोहन, पुष्पा मानकोटिया, सुभाष रस्तोगी, पृथ्वीराज कालिया, सुमन मोंगा, अरुणा कपूर, विजय कपूर, हरीश आनन्द, कुसुम अंसल, विजय सहगल, अनुराग ललित, शुभदर्शन, रमेश मेहता, विनोद शाही, विनोद पंकज, हरमेन्द्र बेदी, राकेश प्रेम, शहर यार, मणिका मोहिनी, राजेन्द्र टोकी, शैलेन्द्र शैल, शशि सहगल, राकेश कुमार तथा सुरेश धींगड़ा आदि।

नामों के इस घटाटोप में कुछ नाम और भी जोड़े जा सकते हैं। मकसद हिन्दी कविता को समृद्ध करने वाले इन तथा दूसरे तमाम कवियों को रेखांकित करना।

अतुलवीर अरोड़ा, तेजी ग्रोवर, जगमोहन चोपड़ा, हरमेन्द्र बेदी, शुभदर्शन, चन्द्रशेखर, फूलचन्द मानव, कुसुम अंसल, विजय, चन्द्रशेखर जैसे कवि अपने कविता-संग्रहों के माध्यम से तथा सुरेश धींगड़ा, मणिका मोहिनी तथा पुष्पा मानकोटिया अपनी कविताओं के माध्यम से सामने आए हैं।

फूलचन्द मानव की कविताएं आम आदमी के दर्द, संघर्ष तथा चिंतन के द्वन्द्वों को झेली कविताएं हैं, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का अभाव इन कविताओं में जरूर खटकता है, लेकिन कविता सीधे-सीधे पाठक से संवाद करती है।

सीधा संवाद हरमेन्द्र सिंह बेदी की कविताओं में भी मौजूद है 'सीढ़ियां' और 'तीसरा पत्र' भयबोध से निकल कर अलग खड़ा होने की कोशिश करती कविताएं हैं।

अतुलवीर अरोड़ा तथा तेजी ग्रोवर की कविताओं में बिम्बधर्मिता अपने समकालीनों से अपेक्षाकृत अधिक है। सरल सी लगती स्थितियों, कभी-कभी जटिल रूप-विधान स्थितियों के भी जटिल हो जाने का एहसास देता है। यही एहसास कभी-कभी इन कविताओं से भी उभरने लगता है, लेकिन फिर पाठक का विश्वास जीतती ये कविताएं सार्थकता के ठोस धरातल पर खड़ी होती हैं। अल्बर्ट अर्नेस्ट की कविताओं में चित्रकार के बिम्ब शब्दों में बंधकर उपस्थित होते हैं।

कमल कुमार की कविताएं अभाव में जीते लोगों के दर्द को संवेदना के स्तर पर जीने की कोशिश है। राजनीतिक तनावों और सामाजिक सम्बन्धों के विविध रूपों की पहचान 'उपहार' जैसी कविता में होती है, तो 'अन्तराल' जैसी कविता बच्चों के अस्तित्व के सामने अपने अस्तित्व को खण्डित होते हुए देखती हैं। कुसुम अंसल की कविताएं खोखले विद्रूप को नकारती लगती हैं और मानवीय सन्दर्भों के आत्मीय प्रसंगों को पकड़ने की कोशिश करती हैं।

कुलदीप सलिल की कविताओं में सहजता है, सौन्दर्य है, लय है और है अपने अनुभवों को दूसरों के साथ बांटने की अदम्य लालसा।

पंजाब के कवियों ने हिन्दी कविता के चलताऊ मुहावरे और फिकरेबाजी से बचकर अपनी कविता-फार्म खुद खोजी है और खोज रहे हैं। सुरेश धींगड़ा इस दृष्टि से एक जागरूक

कवि हैं। उनकी कविता 'सिलसिला' इस का प्रमाण है :

साल-दर-साल
आदमी यातना से गुजरता है

× ×

खत्म नहीं होता सिलसिला
तुम्हें भी तो आदमी बनना है मेरे बच्चे।
मैं तुम्हारे अधिकारों में इज़ाफा नहीं कर सकूंगा
उत्तराधिकारों की आड़ में तुम्हें सौंप दूंगा
ज़िल्लत और बेबसी
तब तुम अपने वंशजों की नाकामियों का बोझ
ढोने में खत्म हो जाओगे
तुम मुझसे वैसे ही प्रश्न कर सकोगे
जैसे मैंने अपने पिता से किए थे
लेकिन न मैं तुम्हें उत्तर दूंगा
न मेरे पिता ने दिया था मुझे
अनुत्तरित प्रश्नों का/
खत्म नहीं होता सिलसिला

× ×

तुम्हारे बच्चे को भी तो आदमी बनना है मेरे बच्चे !

यह तथा सुरेश धींगड़ा की तमाम दूसरी कविताएं उनकी उस छटपटाहट को ध्वनित करती हैं, जो आज पंजाब के सभी प्रगतिचेता कवियों में मौजूद है। जहां वे व्यवस्था-तन्त्र को पहचान रहे हैं, उससे जूझ रहे हैं। अनास्था से नहीं, आस्थावान और प्रतिबद्ध होकर लड़ रहे हैं, कुछ रच रहे हैं। युवा कवि हरीश आनन्द की तमाम कविताएं इसका प्रमाण हैं।

लम्बी कविताओं के क्षेत्र में भी पंजाब के अनेक कवियों की महत्वपूर्ण लम्बी कविताएं सामने आयी हैं। नरेन्द्र मोहन की 'एक अग्निकांड जगहें बदलता', सौमित्र मोहन की 'लुकमान अली' बलदेव वंशी की 'उपनगर में वापसी' मोहन सपरा की 'वक्त की साज़िश के खिलाफ' तथा सुरेश धींगड़ा की 'अपना शव ढोती संस्कृति की यात्रा' और 'चौराहा लाल' का उल्लेख किया जा सकता है। गीत रचना और व्यंग्य कविता के क्षेत्र में देवराज दिनेश एक महत्वपूर्ण कवि हैं। लोकगीतों की धुन पर सुरेश ने, ग़ज़ल में चन्द्रत्रिखा, सत्यानन्द शाकिर तथा तुक्तक-प्रयोग में चन्द्रशेखर ने सृजनात्मकता के साथ साक्षात्कार किया है।

समकालीन कविता के आक्रामक तेवर से हटकर प्राकृतिक सौन्दर्य पर केन्द्रित कुछ कविताएं पंजाब की कलम से आयी हैं। जगमोहन चोपड़ा की —

शिमला
तुम्हें छोड़ गया था मैं
बादलों की गोद में
बरसाती झरनों
चीड़ों की चांदनी
हरे पत्तों, सफेद धुन्ध में चिपके
ठण्ड के
एक गौरव बिन्दु के रूप में।

इसी तरह से रमेश मेहता की कविता 'शीतकाल में घाटी' एक ठोस बिम्ब देती है :

घाटी
सोई हुई है
ठंड से दुबकी
बर्फ का लिहाफ ओढ़े
कांगड़ी की गर्मी को
बूंद-बूंद पीती
सपनों की नगरी में
खोई हुई है
घाटी सोई हुई है

घाटी के जगने और घाटी के नहाने के दो और खूबसूरत बिम्ब भी इसी कविता का अगला हिस्सा है :

मांसल और दैहिक प्रेम, पत्नी-पति के टूटते सम्बन्ध और कहीं वायवी किस्म के प्रेम को भी पंजाब के कवियों ने कविता का विषय बनाया है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि समकालीन हिन्दी कविता के पूरे परिप्रेक्ष्य में पंजाब के कवि हिन्दी कविता को विकसित करने, मांजने और उसकी धारा को मानवीय पक्षों में मोड़ने में प्रयत्नशील हैं। आज उनका इतना आग्रह रूपवाद पर नहीं है, जितना आदमी की पहचान करने में है। सम्बन्धों में खोई गरमाहट को फिर खोज रहे हैं ये कवि और तराश रहे हैं कविता का अपने वक्त से मेल खाता कोई चेहरा। □

एफ-101, राजौरी गार्डन, नयी दिल्ली-110027

□ □ □

एक कहानी का तरक़ीबी अमल

अमृता प्रीतम



मैं एक कहानी लिखना चाहती थी, उस एक अकेली औरत पर, जिसने एक कालेज की प्रिंसीपल होने के नाते सारी ज़िंदगी किताबों में गुज़ार दी है, लेकिन उसने मेरी दोस्ती को कोई भी जाती सवाल पूछने का हक नहीं दिया। कभी पिघले-से क्षणों में बस इतना भर कहा—"ज़िन्दगी में कुछ-एक क्षण किसी की मुहब्बत के आए भी तो क्या···" और इन लफ्ज़ों के बाद हमेशा एक खामोशी फैल जाती थी—एक बहुत बड़े वीराने की तरह।

अचानक इस खामोशी के वीराने में एक दिन मुझे लगा—जैसे वह अकेली औरत, एक तिमंजला इमारत की तरह थी और जिसके खंडहरात बताते हैं कि उसकी पहली मंज़िल ज़रूर कभी किसी की मुलाकात से आबाद हुई होगी·· सहज एक कहानी कागज़ पर उतरने लगी जिसमें पहली मंज़िल का मैं ज़िक्र करने लगी तो दो परछाइयां उभरने लगीं·· मैंने लिखा, "हवा कुछ तेज सी बहने लगी, शायद इसलिए कि हवा में तेरी सांस मिली हुई थी। और हवा की छाती में' खड़े हुए पेड़ों के पत्ते धड़कने लगे। मैं हड्डियों की और मांस की एक इमारत थी, लेकिन तुम्हें राह से गुज़रते देखा तो जैसे अपने ही बदन से बाहर आ गई—देखा कि बाहर तेरे पैर जैसे राह से बातें कर रहे हों। जाने तूने क्या कहा कि राह की मिट्टी का रंग गुलाबी-सा हो गया। और फिर जब दोबारा तुम उस राह से गुज़रे और एक पेड़ के नीचे पल भर के लिए रुक गए, तो बाद में उस पेड़ ने मुझे बताया कि उस दिन उसकी टहनियों पर बौर पड़ा था·· और फिर एक दिन बहुत गर्म दोपहर थी, जब तुम उस राह से गुज़रे, तो मेरे दरवाजे के सामने ऐसे प्यासे से खड़े हो गए, जैसे उस दरवाजे से तुम किसी कुंए का पता पूछ रहे थे·· मैं एक इमारत थी, और इमारत के भीतर एक पानी का घड़ा था, तुम चुपचाप इमारत में दाखिल हुए, और पानी का कसोरा पी लिया···तुम जब भी कभी उस राह से गुज़रते, तुम्हें प्यास लगती, और तुम पानी का घूंट पीकर चले जाते···और बाद में मुझे लगता, जैसे मैं सूखे हुए गले जैसी हो जाती थी, और एक प्यास मेरे होंठो पर तड़पने लगती थी···"

वह औरत एक इमारत की सूरत में मेरे सामने आई, तो मेरी नज़र में उस इमारत की नीचे की मंज़िल उस धरती की तरह हो गई, जो कभी मुहब्बत का मौसम आने पर ज़रखेज़ हो गई थी···और उस इमारत की दूसरी मंजिल, उसी ज़रखेज़ता की दूसरी मंजिल बन गई, जहां तन बदन पर फूल खिलते हैं··· मेरी कहानी कुछ इस तरह आगे बढ़ी—"तुम आए, और एक दिन पानी का घूंट पीने के बाद दूसरी मंजिल की सीढ़ियों की ओर देखने लगे···यह शायद तन की प्यास के साथ मन की भूख का इशारा था·· और ऊपर की सीढ़ी पर कदम रखते हुए जब तूने दीवार पर हाथ टिका दिया, तो मुझे लगा कि एक कंपन मेरे पहलू से गुज़र गया है···"

यह कहानी औरत की थी, जो इमारत की सूरत अख्तियार कर चुकी थी, इसलिए इमारत की दीवार औरत का कंधा भी हो सकती थी, उसकी बांह या हाथ भी···

और जिस्म की बात, अंगों की गोलाइयों की बात, ऊपर की मंजिल तक फैली हुई हरी बेलों में, और बेल के फूल पत्तों में ढलती गई···

बात इमारत की थी, जहां एक कोने में घर का चूल्हा जल रहा था·· उस चूल्हें में जलती हुई आग, जिस्म में बढ़ती हुई तपिश का प्रतीक हो गई, और जिसकी लपट का साया उस आने वाले की आंखों में चमकने लगा···

उस वक्त उस औरत और उस मर्द में कुछ संकोच, कुछ

झिझक भी नुमायां हुई होगी, उसी का बयान कहानी में नुमायां हुआ, "लकड़ियों से कुछ चिंगारियां उठकर मेरे पैरों के पास आ पड़ीं, पर मैंने उन चिंगारियों को पैरों से मसल दिया···"

चूल्हे पर पकने वाली गर्म रोटी उस औरत उस मर्द के तन की भूख का प्रतीक हो गई, जिसका एक निवाला खाते हुए एक कंपन दोनों के बदन से गुज़र गया···

लेकिन बदन में छुपे हुए कंपन को नज़र से पकड़ना आसान नहीं था, इसलिए एक बदन दूसरे बदन को गले से लगाते हुए जैसे अपना-अपना कंपन छिपाने भी लगा, और एक दूसरे का कंपन ढूंढ़ने भी लगा···

कहानी में इमारत की बात चलती गई, तो अचानक मुझे उस इमारत का एक तहखाना नज़र आने लगा, जहां जाने क्या-क्या रखा हुआ था···

जो औरत मेरी कहानी की किरदार थी, उसने अपने मुंह से कभी कुछ भी तो नहीं कहा था, शायद इसीलिए कहानी में एक ऐसा तहखाना शामिल हो गया, जिस की बात करते हुए कहानी आगे बढ़ी, "और जब तू चला गया, मैंने अपनी उम्र का बीसवां साल अपने बदन से उतार कर तहखाने में रख दिया···"

कहानी और आगे बढ़ी, तीसरी मंज़िल की तरफ, जिसमें उस औरत की ज़िन्दगी के वह साल थे, जब उसका मुता-लिआ बढ़ता गया था, डिगरियां बढ़ती गई थीं, और रोटी-रोजी की जद्दोजहद के साथ ज़िंदगी की खामोशी भी बढ़ती गई थी। उस वक्त कहानी के अल्फाज़ हैं, "तुम एक दिन फिर आए, बहुत अरसे के बाद, उस दिन तुम्हारे पैरों में पहली मंजिल वाला संकोच न था, न दूसरी मंज़िल वाला, तुम सीधा तीसरी मंजिल पर आ गए, जहां मेरी इंतजार के दिनों जैसी, बंद, ठंडी और खामोश सैंकड़ों किताबें थीं···तुम कितनी देर खामोश खड़े रहे, जैसे किताबों में एक और किताब बढ़ गई हो···"

कहानी में उस मर्द की आमद का, दो मंज़िलों से गुज़र कर कुछ निसंकोच हो जाने पर भी, तीसरी मंज़िल पर पहुंच कर खामोश किताबों में पड़ी हुई एक किताब की तरह हो जाना, मेरी नज़र में एक ऐसी मुलाकात का होना था, जिसका वर्तमान था, पर भविष्य नहीं था···

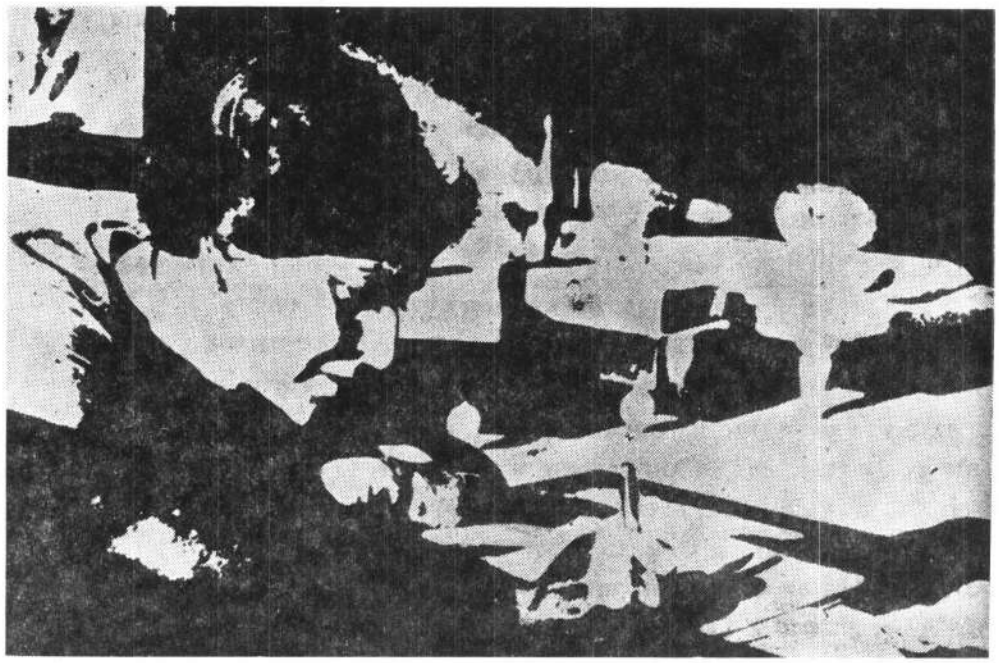
भविष्य नहीं था, यह भी एक सच्चाई थी, लेकिन वर्तमान था, यह भी एक सच्चाई थी। और वर्तमान की उस सच्चाई को पकड़ने के यत्न में कहानी इन अल्फाज़ में ढल गई, "मैंने कुछ आगे होकर तेरे हाथ को इस तरह छुआ, जैसे हौले-से एक किताब की जिल्द को उठा कर उसका पहला वर्क देखा हो···तू हंस सा दिया, जैसे उस किताब की इबारत होंठों में भर ली हो और तूने मेरे होठों को इस तरह छुआ, जैसे मेरे होंठों में भरी इबारत को पढ़ना चाहा हो···"

उस वक्त मांस की दीवार औरत के बदन पर से भी गिर जाती है, और मर्द के बदन से भी। और वर्तमान की क्षणभर की सच्चाई उनके उस वस्ल से नुमायां होती है, जब वह दो नदियों के पानी की तरह मिलते हैं···और उन के अहसास उस पानी में हंसों की तरह तैरते हैं···

हसीन पलों में डूबने-उतरने के बाद मेरी कहानी जिन्दगी के उस यथार्थ की तरफ लौटती है, जो मैंने उस औरत की ज़िन्दगी में देखा था। कहानी के अल्फाज़ हैं, "नदियां जब सूखती हैं, फिर मिट्टी बन जाती हैं। तुम पास थे, तो मैं नदी थी, तुम चले गए, तो मैं मिट्टी थी—मांस—मिट्टी की औरत।"

लेकिन किसी बदन में से हसीन पलों का गुजर जाना, एक कयामत का गुज़र जाना होता है, जिनसे किसी औरत की कोख में पलने वाले सपने से इन्कार नहीं हो सकता। मेरी कहानी ने

कहानी लिख कर एक दिन मैंने अपनी दोस्त उसी औरत को यह कहानी सुनाई, जो मेरी कहानी की किरदार है। पूछा—आपने कभी कुछ नहीं बताया, लेकिन क्या मैं आपकी जिंदगी की हकीकत को कुछ पकड़ भी पाई हूं कि नहीं? वह हंस दी, सिर्फ इतना ही कहा, यह कहानी मेरी भी हो सकती है, किसी की भी हो सकती है···'



उसी को पकड़ना चाहा, और कहा, "और फिर तुम आना भूल गए। और एक रात मेरी कोख में से रोने की आवाज़ इस तरह आती रही, कि मैंने अपनी कोख को और उसमें से उठने वाली किसी के रोने की आवाज़ को अपने बदन से उतार कर तहखाने में रख दिया। सोचा जब कभी तुम आओगे तो मैं तुम्हारा हाथ पकड़ कर तुम्हें तहखाने में ले जाऊंगी···वहां अपनी उम्र से काट कर जो मैंने अपना बीसवां साल रखा हुआ है, और कोख में उठने वाली जो किसी के रोने की आवाज रखी हुई है, वह सब दिखाऊंगी···"

और कहानी एक नामुराद इंतजार की बात करती है, "तेरे इकरार को मैंने अपने हाथ में फूल की तरह पकड़ा हुआ नहीं था, मैंने उसे अपनी हथेली में बो लिया था। वह कितने ही बरस मेरी हथेली पर खिलता रहा। लेकिन मांस की हथेली आखिर मांस की होती है, मिट्टी की तरह हमेशा जवान नहीं रहती। उसमें सालों की झुर्रियां पड़ जाती हैं, और जब वह बंजर होने लगती है तो उसमें खिला हुआ हर फूल-पत्ता मुरझा जाता है···तेरे इकरार का फूल भी मुरझा गया, और एक दिन मैंने कांपते हाथों से उस मुरझाये हुए फूल को तहखाने के अंधेरे में रख दिया···"

जिन्होंने दुनिया के मिथक पढ़े हैं, जानते हैं कि यूनान के मिथिहास में आज से हजारों साल पहले यूरेनस नाम का एक मर्द हुआ है, जिसने गाया नाम की औरत से मुहब्बत की थी लेकिन गाया की कोख में से जो बच्चा पैदा होता था, वह उसे धरती के नीचे दफन कर देता था, और गाया को हमेशा धरती से बच्चे के रोने की आवाज़ आती रहती थी···

मैं कहानी लिखती गई तो अचानक तहखाने की बात करते हुए मेरे सामने यूनान का मिथिहास आ गया, और लगा, जैसे मेरी कहानी उसी मिथिहास का एक नया दर्शन है···

कहानी लिख कर एक दिन मैंने अपनी दोस्त उसी औरत को यह कहानी सुनाई, जो मेरी कहानी की किरदार है। पूछा– आपने कभी कुछ नहीं बताया, लेकिन क्या मैं आपकी ज़िन्दगी की हकीकत को कुछ पकड़ भी पाई हूं कि नहीं ? वह हंस दीं, सिर्फ इतना ही कहा, "यह कहानी मेरी भी हो सकती है, किसी की भी हो सकती है···"

कहानियां कब कैसे प्रतीक धारण करती हैं, या वह मुअज़ले (चमत्कार) होते हैं, जिन्हें अभिव्यक्त करने के लिए किरदार गढ़ लिए जाते हैं, यह कुछ पकड़ में नहीं आता। लेकिन हमारा इतिहास भरा हुआ है, ऐसी प्रतीकात्मक कथाओं से। मिसाल के तौर पर एक हवाला देती हूं। हमारे इतिहास में पुरूरवा और उर्वशी की जो कहानी सदियों से चली आ रही है, और जिस पर कई बार नाटक भी खेले गए हैं, वह किरदार हमारी नजर में इतने हकीकत बन चुके हैं कि पुरूरवा को एक बादशाह के तौर पर ही हम देखते हैं, जिसे एक अप्सरा उर्वशी से प्यार हो जाता है, और वह उसकी जुदाई में व्याकुल होकर राज भवन में तड़पता है।

लेकिन हकीकत यह है कि कुदरत के कुछ तत्वों को नुमायां करने के लिए यह किरदार गढ़ लिए गए थे। पुरूरवा कोई बादशाह नहीं है, वह एक खास समय का नाम है। बुध ग्रह कभी भी सूर्य से सत्ताइस अंशों से ज्यादा दूर नहीं रहता। लेकिन वही जब साढ़े सत्ताइस अंशों पर पहुंचता है, तो सूरज की रोशनी उसके दोनों तरफ पड़ती है। उसे मद्धम बिंदु या गर्म बिंदु कहते हैं। धरती जब उस मद्धम बिंदु को छू लेती है, तो उस काल का नाम पुरूरवा होता है। उसी मद्धम बिंदु से चंद्र बिंदु के भ्रमण की दिशा शुरू होती है, और उसी की उत्तर दिशा का नाम उर्वशी है। सत्ताइस अंश उत्तर की तरफ जब चंद्रमा आता है, तो वह समय उर्वशी और पुरूरवा के मिलन का होता है। कुदरत के इन्हीं तत्वों के मिलन से राजा पुरूरवा और अप्सरा उर्वशी की रोमांचक कहानी ने जन्म लिया था···

के-25 हौजखास एनक्लेव, नयी दिल्ली-110016

कबीरदास कहां हो तुम

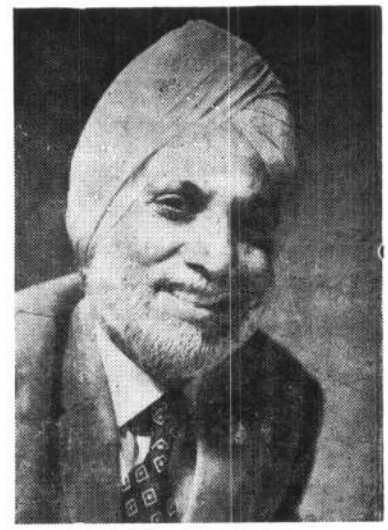
—डा. नरेन्द्र मोहन

मुझे क्या हो गया है
लाली देख मुझे याद आता है कबीर—
"लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गयी मैं भी हो गयी लाल।।"
लाली देखता हूं मैं भी
पर लाल होने के बजाय
राख होता हूं
कांपता हूं दहशत में
और भागता हूं
मुझे हर तरफ
अपना घर
जलता हुआ दिखता है
मैं क्या करूं
कब तक बन्द रखूं आंखें
हर तरफ वही लाली
मैं बुझ रहा हूं
बुझता जा रहा हूं
कबीरदास कहां हो तुम। □

**239-डी, एम. आई. जी. फ्लैट्स,
राजौरी गार्डन, नयी दिल्ली-110027**

हाल मुरीदों का कहना...

□ डा. रणवीर रांग्रा



श्री कर्त्तार सिंह दुग्गल

कर्त्तार सिंह दुग्गल उर्दू, पंजाबी, हिन्दी और अंग्रेजी में समान अधिकार से लिखते हैं, पर जहां तक सर्जनात्मक साहित्य का प्रश्न है उसे वे मूलतः अपनी मातृभाषा पंजाबी में ही लिखते हैं और फिर आवश्यकतानुसार स्वयं ही उसका अनुवाद कर लेते हैं। अपने प्रतिनिधि संकलन की भूमिका में वे अपने से पूछते हैं, "मैं क्यों लिखता हूं ?" और स्वयं ही इसका उत्तर देते हुए लिखते हैं, "मैं लिखता हूं, क्योंकि दिल के इस कोने में एक दुलहिन छिपी बैठी है। इस हसीना को व्यक्त करना है। इसके जीवन की एक झलक दिखाना है, यह मेरा ईमान है। सैंकड़ों कलमों की स्याही सूख-सूख गई है, अभी तक इसका रूप चित्रित नहीं हो सका, अभी तक उसकी छवि मेरी पकड़ में नहीं आई। इसके सीने का राज़ जो कभी से यह दिल पहचान रहा है, अभी इसको वाणी नहीं मिली। एक छलना-सी, कभी वह पहचानी-पहचानी लगती है, कभी अजनबी-अजनबी। दूर क्षितिज पर खड़ी मुस्करा रही है, और मेरी अकल की दौड़-दौड़ कर एड़ियां घिस गई हैं।" इसी भुवनमोहिनी को पकड़ने के फेर में वे अब तक चार सौ से अधिक कहानियां, सात उपन्यास, सात नाटक, पच्चीस एकांकी और रेडियो नाटक तथा दो कविता-संग्रह लिख चुके हैं। 'हाल मुरीदा'. 'मां पिओ जाय', 'मन-परदेशी', 'सरद पूनम दी रात', उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं; 'सवेर सार', 'डंगर', 'नवां घर', 'करामात', 'इक छिट्ट चानन दी', 'माझा नहीं मोया, प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं ; 'इक सिफर-सिफर', 'सत्त नाटक' ; 'पुरानियां बोतलां' प्रसिद्ध एकांकियों और नाटकों के संकलन हैं। हिन्दी में इनके 'हाल मुरीदों का', 'चोली-दामन', 'शरद पूनम की रात' 'उसकी चूड़ियां', 'सवेरा', 'मन-परदेसी' नामक उपन्यास ; 'मोतियों वाले', 'पचपन कहानियां', 'एक किरण चांदनी की', 'सीमा-रेखा', 'एक अंधेरी रात' नामक कहानी-संग्रह और 'पुरानी-बोतलें' नामक नाटक-एकांकी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

साहित्य के प्रति दुग्गल का दृष्टिकोण सकारात्मक है, नकारात्मक कतई नहीं। अपने कहानी-संग्रह 'मोतियों वाले' की भूमिका में वे लिखते हैं, "हमारे देश में कहानी-कला कई मंज़िलों से गुज़र चुकी है, परन्तु कला का सम्बन्ध जीवन से बहुत गहरा होने के नाते वही कहानियां जीवित रही हैं जिनमें इन्सान की महानता को व्यक्त किया गया है। मेरी दृष्टि में अच्छी कहानी वह है जो अच्छे लोगों का जिक्र करे, वे लोग जो अच्छे हैं; चाहे अच्छे बन चुके हैं, चाहे अच्छे बन रहे हैं। यह अच्छाई भौतिक भी हो सकती है और आध्यात्मिक भी। आध्यात्मिक अच्छाई आखिर क्या अच्छाई हुई यदि वह भौतिक अच्छाई नहीं?" अपनी बात को स्पष्ट करते हुए वे आगे लिखते हैं, "बुराई का केवल बुराई को दिखाने के लिए वर्णन करना, गन्दगी को केवल उसे उछालने के लिए प्रस्तुत करना, मेरी राय में किसी अमर कला का विषय नहीं हो सकता। वैसे वक्ती तौर पर चाहे कोई कीचड़ से खेल ले, कौन चाहता है कि उसके हाथ सदा मैले से सने रहें ? कौन चाहता है कि कोई कूड़े को संभाल-संभाल कर रखे ? बदबूदार नाले के किनारे घर बसाने वालों की नाक हमेशा सड़ती रहती है, उनके बच्चों को सुगन्ध की पहचान नहीं रहती। इसका यह अर्थ नहीं कि कला में बुरे लोगों का बखान वर्जित है। बुराई का स्थान कला में अवश्य है, यदि वह बुराई अपने पास पड़ी हुई अच्छाई को और अधिक उजागर कर दे, अच्छाई और अच्छी लगने लगे, प्यारी लगने लगे।"

पिछले दिनों उनके साथ उनके साहित्य पर चर्चा करने का मौका मिला तो मैंने पूछा, "आपने कहानियां भी लिखी हैं और उपन्यास एवं नाटक भी तथा वे प्रसिद्ध भी हुए हैं। किसी विधा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने का निश्चय आप कैसे करते हैं ? क्या कभी ऐसा भी हुआ है कि किसी विधा में आरंभ

की गई रचना उसमें समा न पाई हो और उसे अन्य विधा में ढालना पड़ा हो ?"

अपने पूरे लेखन का जायज़ा लेते हुए वे बोले, "मैंने अपना साहित्यिक जीवन एक कवि के रूप में शुरू किया था। मेरे दो कविता-संग्रह पंजाबी में हैं। आजकल भी कभी-कभी मैं कविता लिखता हूं। कविता के साथ-साथ मैंने पहले कहानियां लिखनी शुरू कीं। बाद में उपन्यास लिखे। जब रेडियो में आया तो नाटक लिखने शुरू कर दिए। मैंने नाटक इसलिए लिखे कि नाटक मेरा व्यवसाय बन गया था। रेडियो में मैं नाटकों का निर्देशन करता था। कहानियां मैंने शायद इसलिए लिखनी शुरू की कि उन दिनों कहानी को बहुत लोकप्रिय माध्यम माना जाता था। धीरे-धीरे कविता लिखना मैंने काफी कम कर दिया, क्योंकि मेरी कहानियां भी कविता के नज़दीक होती हैं और नाटक भी। मेरा पहला उपन्यास 1948 में प्रकाशित हुआ जो मैंने शायद 1946-47 में लिखना शुरू किया था। अब तक मेरे कोई बीस-बाईस कहानी-संग्रह हैं जिनमें 400 से अधिक कहानियां हैं। मैं सात उपन्यास, सात नाटक और पच्चीस एकांकी और रेडियो नाटक लिख चुका हूं।

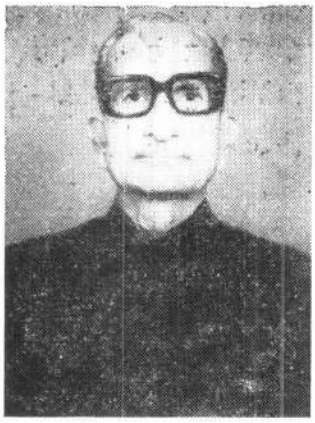
हर विषय जिसको मैं हाथ में लेता हूं वह अपना रूप खुद लेकर आता है। एक बात जो मैं कहना चाहता हूं, यदि वह कहानी में ही बेहतरीन कही जा सकती है तो वह कहानी का रूप लेकर आती है। बहुत बड़े कैनवस में मैं जो बात कहना चाहता हूं, उपन्यास बन जाती है। लेकिन एक दफा यह हुआ कि एक चीज जो नाटक की शक्ल में आयी थी, मैंने उसे कहानी की शक्ल में लिख लिया। यह इसलिए हुआ कि मेरा एक कहानी-संग्रह छप रहा था और मेरे प्रकाशक को एक और कहानी की ज़रूरत थी। मैंने नाटक न लिख कर कहानी लिख डाली। वह कहानी 'कहानी कैसे बनी' नाम से छप गई। उसकी चर्चा भी हुई। लेकिन मेरे अंदर एक चुभन सी बनी रही कि मैंने उस पात्र के साथ इन्साफ नहीं किया था। आखिर हार कर मैंने उसे नाटक की शक्ल दी।

मेरी एक मशहूर कहानी है 'चांदनी रात का एक दुखांत।' उसकी बहुत चर्चा भी हुई है। कई रेडियो कलाकारों ने कहा कि आप इसका नाट्य-रूपांतर कर दें, हम इस नाटक को खेलेंगे फिल्म वालों ने कहा, आप इसे फिल्म की कहानी बना दें। कई दोस्तों ने कहा इसका उपन्यास बन सकता है रिटायर होने के बाद जब मेरे पास कुछ फुर्सत हुई तो मैंने उस कहानी को उपन्यास की शक्ल में ढाला, उसका कैनवस बढ़ाकर रख दिया। उस उपन्यास का नाम है 'शरद पूनम की रात'।"

पाठकों की बात उठाते हुए मैंने पूछा, लिखते समय क्या अपका सारा ध्यान अपने भीतर की अनुभूति को कागज़ पर उतारने की कोशिश में ही लगा रहता है या उस समय आपके ज़ेहन में पाठक भी रहते हैं जिन तक आप अपनी बात पहुंचाना चाहते हैं ? इस विषय में अपने दृष्टिकोण के क्रमिक विकास का उल्लेख करते हुए उन्होंने बताया, "सच्ची बात तो यह है कि एक जमाने तक मैंने अपने पाठकों की कभी परवाह नहीं की थी और मैं समझता हूं मेरी सफलता का एक राज यह भी है। शुरू-शुरू में मैंने कुछ ऐसी कहानियां भी लिखी जिनके लिये पंजाबी पाठक बिलकुल तैयार नहीं थे। मेरी कहानियों को पढ़ कर लोग परेशान होते थे। लेकिन मैं जो कुछ कहना चाहता था उसके लिए मैंने कभी यह नहीं सोचा कि मेरे पाठक इसके लिये तैयार हैं या नहीं। लेकिन फिर एक स्टेज आयी जब मुझे लगा कि यह ज़्यादती है। हर साहित्यकार को अपने पाठक को अपने साथ लेकर चलना होता है। मैं यह भी नहीं कहता कि मैं पाठक के स्तर पर उतर आया, लेकिन पाठक तक मैं पहुंच सकूं इसकी मैंने कोशिश की। इस दौरान मेरी कई रचनायें विश्वविद्यालयों में पाठ्यपुस्तकों के तौर पर पढ़ाई जाने लगी। उन पर लोगों ने जो नोट्स तैयार किए, जिस तरह की वे लोग व्याख्या करते थे उसे देखकर मुझे लगा कि मेरी बात उनके पल्ले नहीं पड़ी है। मुझ पर कई लोगों ने शोध-प्रबंध भी लिखे और जब वे मेरे पास पहुंचे तो मैं काफी परेशान हुआ। तब मुझे लगा कि मुझे अपने पाठकों को भी साथ लेकर चलना चाहिए।"

"बुद्धं शरणं गच्छामि" कर्त्तार सिंह दुग्गल का प्रसिद्ध नाटक है जो अजन्ता की गुफाओं पर आधारित है। उसमें प्रेम की वर्जना के बावजूद भिक्षुणी थेर, मूर्तिकार भिक्षु मदर बन्धु पर बरबस आसक्त हा जाती है। भिक्षु भीतर से आकृष्ट होकर भी प्रत्यक्ष रूप से उसकी घोर उपेक्षा करता है जिससे तिलमिला कर वह पूरे बौद्ध दर्शन की कृत्रिमता पर व्यंग्यबाण छोड़ने लगती है, "हमारी रूचियों को अब क्या हो गया है ? हर दीवार पर औरत, हर कौने में औरत, हर स्तंभ पर औरत, औरत हमारे कलाकार की रग-रग में समा गई है। पत्नियों को बिलखता हुआ छोड़कर, माओं को तड़पता हुआ छोड़कर, बहनों को सिसकता हुआ छोड़कर, भिक्षु बने, भगवान की शरण आये ये कलाकार दिन-रात, "रात-दिन औरत को मन में बसाए रहते हैं।" इस नाटक पर चर्चा छेड़ते हुए मैंने कहा, "आपका यह नाटक विकारग्रस्त धार्मिक जीवन पर करारी चोट करता है। भिक्षुणी थेर के माध्यम से आपने जबरदस्ती ओढ़ी हुई निवृत्ति के भीतर पनप रही गहरी प्रवृत्ति की मार्मिक झांकी दिखाई है। इस नाटक की प्रेरणा आपको कहां से मिली ? इसके मंचन के बारे में अपने अनुभव बताएं और दर्शकों की प्रतिक्रिया भी।"

प्रश्न से अभिभूत होते हुए वे बोले, 'बुद्धं शरणं गच्छामि' मेरा सबसे सशक्त नाटक है। मेरा यह सबसे प्यारा नाटक है। इसके लिये मैंने सबसे ज्यादा मेहनत की है। यह नाटक मैंने हैदराबाद में लिखा था। हम लोग अजन्ता गुफाओं को देखने



डा. रणवीर रांग्रा

प्रखर समालोचक और भेंटवार्ताकार। भूतपूर्व निदेशक, केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली। 'साहित्यिक साक्षात्कार' नामक पुस्तक में हिन्दी के शीर्षस्थ साहित्यकारों से भेंटवार्ताएं करने के पश्चात् अब अन्य भारतीय भाषाओं के लेखकों से भेंटवार्ताएं कर रहे हैं।

गये थे। मैं जब वे गुफाएं देखकर लौट रहा था तो मेरे अंदर अचानक यह सवाल उठा कि आखिर इतनी खूबसूरत चीज बनाकर ये लोग गुफाओं को खाली करके क्यों चले गये। इसी बात को लेकर मैंने यह नाटक लिखा।

जहां तक मंचन का ताल्लुक है यह नाटक अभी तक स्टेज पर नहीं खेला गया है। पिछले साल रेडियो श्रीनगर के मशहूर प्रोड्यूसर प्राणकिशोर ने जब इसे पढ़ा तो कहा कि मैंने कई सालों से रेडियो ड्रामे में काम करना बंद कर दिया है, लेकिन मैं इस नाटक को खेलूंगा। उन्होंने नाटक समारोह में इसे प्रोड्यूस किया और इसमें भाग भी लिया। उनका कहना है कि श्रीनगर जैसे शहर से एक हजार से भी ज्यादा चिट्ठियां आईं नाटक की प्रशंसा में।"

इसी नाटक को लेकर मैंने एक और प्रश्न किया, "पुरुष की धांधलियों के विरुद्ध विद्रोह की जो आग आपके इस नाटक की नायिका थेर तथा अन्य नाटकों और एकांकियों की नारी में मिलती है, वह आपकी कहानियों के नारी-पात्रों में नही मिलती 'शमा' 'एक अंधेरी शाम', 'सीमा-रेखा', 'यमुना' आदि कहानियों की नारी पुरुष से दब कर भीतर ही भीतर घुलती रहती है। उसका विद्रोह मुखर नहीं होता। प्राचीन मूल्यों के प्रति विद्रोह के कारण वह खुलकर विद्रोह नहीं कर पाती, जब कि आज की नारी में विद्रोह स्पष्ट झलकता है। क्या आपको भी ऐसा लगा है ?" प्रश्न के मूल बिन्दु से सहमति व्यक्त करते हुए दुग्गल ने कहा, "मैं सोचता हूं, आपने ठीक नुक्ता पकड़ा है। मैं मानता हूं कि यह जरूरी नहीं कि हर परिस्थिति में नारी पात्र से विद्रोह कराया जाए।"

दुग्गल की कहानियों में पशु-पक्षियों का भी सजीव चित्रण हुआ है और वह भी मुख्य पात्र के रूप में। 'नीली' और 'गेंदिया' नामक कहानियों में क्रमशः गाय और तीतर तो मनुष्य को भी मात दे देते हैं। 'नामुराद' और 'समझौता' में कुत्ते की भूमिका भी बड़ी रोचक रही है। इसलिए मैं जानना चाहा कि क्या पशु-पक्षियों का उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव है। वे बोले, "जहां तक कुत्तों का ताल्लुक है, हमारे यहां हमेशा एक कुत्ता जरूर रहा है। मेरी बीवी और हमारे बच्चे कुत्तों को बहुत प्यार करते हैं। मैं गांव का रहने वाला हूं। जब मैं पशु-पक्षियों को देखता हूं तो वैसे ही देखता हूं जैसे दैनिक जीवन में आम इन्सानों को देखता हूं। पशु-पक्षियों के माध्यम से मैंने मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति की है।"

उनकी अधिकांश रचनाएं आत्मकथापरक दिखती हैं, इस लिये मैंने पूछा, "आपकी कई कहानियां आपबीती अधिक लगती हैं, जैसे- 'शराफत का सदका', 'जिसने मेरे दिल को छुआ', 'ठेकेदार', 'कड़ा और करामात', 'मोतियों वाले', 'वह कौन है ?', 'लाली' इत्यादि। क्या ये आपबीती पर आधारित हैं या इन्हें आपबीती के रंग में ढाल दिया गया है ?" वे बोले, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि अकसर मेरी कहानियां मेरे जीवन से ही निकली होती हैं। यह जरूरी नहीं कि जो बात मेरे जीवन में जैसे घटी, उसे वैसा ही मैंने पेश कर दिया हो। उसमें कुछ बढ़ाकर कुछ घटाकर, कुछ कलात्मक रूप देकर जो मैं कहना चाहता हूं उसे उसके अनुसार ढाल देना होता है। जब भी मैं सफर करता हूं, रेलगाड़ी या हवाई जहाज में, तो कदम-कदम पर मुझे कहानियां बिखरी हुई दिखाई देती हैं। एक बार मैं और संतसिंह सेखों इकट्ठे बस में लुधियाना से चन्डीगढ़ तक सफर कर रहे थे। इस सफर में मुझे तीन-चार कहानियों के प्लाट सूझे। मैंने सेखों साहब को बताया तो उन्होंने कहा कि वे उन पर कहानियां लिखेंगे।

दुग्गल की एक कहानी है 'सिग्रेट पी रही उदास औरत' जिसमें एक विदेशी महिला हवाई जहाज में तस्करी का माल ले जा रही है। रास्ते में वह अपने सिक्ख सहयात्री का कड़ा पहन कर देखती है। उतरते समय वह यात्री उसका भारी थैला स्वयं उठाना चाहता है, पर उसे ऐसा करने नहीं देती और उसे फंसने से बचा लेती है। वह चाहती तो उसे फंसा कर स्वयं बच निकलती। पर उसने ऐसा नहीं किया। ऐसी ही उनकी एक और कहानी है 'कड़ा और करामात' जिसमें एक मुसलमान औरत साम्प्रदायिक दंगों में हवाई जहाज द्वारा दिल्ली से लाहौर जाते समय एक सिक्ख से कड़ा लेकर पहन लेती है। इन कहानियों का हवाला देते हुए मैंने पूछा कि क्या ये कहानियां सच्ची घटनाओं पर आधारित हैं ?' उन्होंने बताया, "आपने पहले जिस कहानी का जिक्र किया है, वह बिलकुल सच्ची घटना पर आधारित है। उस विदेशी महिला ने मेरे साथ ईरान से एथेन्स तक सफर किया था। मेरे कड़े को उसने पहना था और बस। इसके बाद का कथानक कल्पित है। दूसरी कहानी 'कड़ा और करामात' में सच्ची घटना सिर्फ इतनी है कि बंटवारे के फसादों में मेरी एक साली हवाई जहाज में दिल्ली से लाहौर गई थी और वहां पहुं-

बने तक उसने अपनी सुरक्षा के लिए कड़ा पहन लिया था।"

'मन-परदेशी' दुग्गल का नया उपन्यास है। उसमें भारत-विभाजन के बाद की मुस्लिम मानसिकता का यथार्थ चित्रण मिलता है। हिन्दी में यह उपन्यास पिछले वर्ष छपा था। पंजाबी में यह बहुत पहले छप गया होगा, यह सोचकर मैंने पूछा कि सैंतीस-अंटवारे के छत्तीस वर्ष बाद लिखे गए इस उपन्यास की आज क्या प्रासंगिकता हो सकती है? वे बोले, "मैंने यह उपन्यास पंजाबी में भी पिछले साल ही लिखा था। मैं मानता हूं कि विभाजन के बाद यहां के मुसलमानों की मनोदशा पर नहीं लिखा गया है। यह ऐसा विषय था जो अभी अछूता पड़ा था। इसकी घटनाएं उपन्यास में जैसे चित्रित की गई हैं, हू-बहू उस रूप में यथार्थ नहीं है। मेरी बीवी के कुछ रिश्तेदार इधर भारत में हैं, कुछ उधर पाकिस्तान में। उनके साथ मेरा रिश्ता अभी भी कायम है। मैं उन सबकी मनोदशा से परिचित हूं। इसी को इस उपन्यास का आधार कहा जा सकता है।"

उनके उपन्यास 'हाल मुरीदों का' का कैनवस बहुत बड़ा है और उसकी कालावधि भी बड़ी व्यापक है। उसका मूल तथ्य यह लगता है कि आज के ज़माने में सच्चे और सुच्चे आदमी की बेहद दुर्दशा हो रही है। उस पर चर्चा चलाते हुए मैंने कहा, "सच्चे और सुच्चे की दुर्दशा तो आज़ादी से पहले भी होती थी, बल्कि जब से दुनिया बनी है, सच्चे आदमी की ही दुर्दशा होती आई है। हमारी और आपकी पीढ़ी की दिक्कत यह है कि हम यह समझ बैठे थे कि आज़ादी के बाद रामराज्य हो जायेगा, सच्चे और सुच्चे का राज हो जायेगा। पर क्योंकि ऐसा नहीं हुआ, हम एक आक्रोश से भर उठे जिसे आपने इस उपन्यास में संपूर्ण अभिव्यक्ति दी है। क्या यह उपन्यास भी आत्मकथापरक है? इसके नायक कंवलजीत सिंह के रूप में क्या लेखक की आपबीती ही तो इसमें अभिव्यक्ति नहीं पाती रही?"

स्वीकारात्मक लहजे में दुग्गल बोले, "हां, यह उपन्यास किसी हद तक आत्मकथापरक है, अगरचे इसकी कहानी बहुत से स्थानों पर कल्पित है। 'हाल मुरीदों का' दरअसल एक त्रायोलोजी' का पहला हिस्सा है। इसके बाद दो और भाग हैं-'तां-पिओ जाय' और 'जल की प्यास न जाए'। अभी इन्हें हिन्दी में प्रकाशित किया जाना है। उपन्यास की इस माला में पहले विश्वयुद्ध से लेकर आपातकाल तक तथा उसके खत्म होने के बाद श्रीमती इन्दिरा गांधी के फिर से सत्ता में आने तक की सारी अवधि को ले लिया गया है, लगभग अठारह सौ पृष्ठों में।'

साहित्यिक कृतियों के अनुवाद की बात उठाते हुए मैंने कहा, 'साहित्यिक कृति मानव-मात्र के लिए होती है, किसी वर्ग अथवा जाति विशेष के लिए नहीं। पर भाषा और लिपि की दीवारें उसकी अपील को उन लोगों तक सीमित किए रहती हैं जो उस भाषा और लिपि को जानते हैं। आपके विचार से क्या श्रेष्ठ साहित्य-कृतियों के अधिकाधिक भाषाओं में अनुवाद से मानव-एकता और विश्व-शान्ति को बढ़ावा नहीं मिलेगा?"

सहमति व्यक्त करते हुए वे बोले, "इसमें कोई शक नहीं है कि लोगों को एक दूसरे के पास लाने के लिए, एक-दूसरे को समझने के लिए यह जरूरी है कि उनके साहित्य का दूसरी भाषाओं में ज़्यादा से ज़्यादा अनुवाद किया जाए। जब मैं राष्ट्रीय पुस्तक न्यास का निदेशक था तो मेरे सुझाव पर भारतीय साहित्य के आदान-प्रदान की योजना स्वीकार हुई थी। विश्व में कहीं भी कोई अच्छी चीज छपे तो वह हम तक किसी न किसी रूप में पहुंच जाती है। पर तमिल में, मलयालम में या अन्य भारतीय भाषाओं में अच्छी चीजें छपती हैं तो हमें पता तक नहीं चलता। शिवशंकर पिल्ले का उपन्यास यूनेस्को ने अंग्रेज़ी में छापा और पुरस्कृत हुआ, तब जाकर हम लोगों को उसका पता चला। इसी प्रकार पुटप्पा को जब तक ज्ञानपीठ पुरस्कार नहीं मिला, इधर उत्तर भारत में कोई उनका नाम तक नहीं जानता था। इसलिए जरूरी है कि ज़्यादा से ज़्यादा अनुवाद छापे जाएं। और जल्दी छापे जाए, जैसा कि विदेशों में होता है।"

हिन्दी में उपलब्ध दुग्गल की कई रचनाओं में अनुवाद या अनुवादक का कहीं उल्लेख नहीं होता। उदाहरण के लिए 'मन-परदेशी', 'सीमा-रेखा', 'एक अधेरी शाम', 'मोतियों वाले', आदि उनकी पुस्तकें मूल हिन्दी पुस्तकें लगती हैं। इस ओर इशारा करते हुए मैंने पूछा, 'हिन्दी में उपलब्ध आपकी सभी रचनाएं आपकी मूल पंजाबी रचनाओं का हिन्दी-अनुवाद हैं अथवा आप ने कोई रचनाएं सीधे हिन्दी में भी लिखी हैं?' स्थिति को स्पष्ट करते हुए वे बोले, 'मैंने हिन्दी में सीधे बहुत कम लिखा है। मैं पहले अपनी मातृभाषा पंजाबी में ही लिखता हूं। मुझे अपनी रचनाओं का हिन्दी, उर्दू या अंग्रेजी में अनुवाद करने में कोई दिक्कत नहीं होती। मेरा अनुवाद मक्खी पर मक्खी अनुवाद नहीं होता। मैं उसमें लेखक के नाते छूट ले लेता हूं। इसलिए वे अनुवाद लगते भी नहीं हैं। मेरे उपन्यास 'हाल मुरीदों का' का हिन्दी-अनुवाद श्रीमती विजय चौहान ने किया था और अनुवादक के रूप में उनका नाम छपा है।'

रिटायर होने से पहले दुग्गल पूर्णकालिक लेखक कभी नहीं रहे। नौकरी के साथ-साथ उनका लेखन भी निखरता रहा। इसलिए मैंने पूछा, क्या आपको कभी ऐसा नहीं लगा कि यदि आप पूरी तरह लेखन में लग जाते तो उसके प्रति अधिक न्याय कर पाते? कुछ लोग नौकरी-पेशा लेखकों के लेखन-कर्म को शौकिया लेखन कहते हैं और मानते हैं कि शौकिया लेखन में वह

(शेष पृष्ठ 26 पर)



विशाखा ने नवल को समझाया कि एक औरत को दूसरी औरत का हक छीनने में बहुत पीड़ा होती है। और अब तुम उससे विवाहित हो, तुम्हें यह सब नहीं करना चाहिए। नवल कह रहा था 'यह विवाह नहीं अत्याचार है। जिसे मेरा मन नहीं स्वीकारता उसे मैं तन कैसे दे दूं.....'

दूसरी औरत होने का सुख

□ डा. इन्दु बाली

ग़रीब घर की विशाखा के सिर से एक साथ ही पहले पिता का फिर मां का साया उठ गया। श्मशान भूमि में खड़े-खड़े ही उसकी योजना बनने लगी थी। छोटे दुध-मुहें भाई-बहनों का वह अकेली ही सहारा थी। बहुत सोचने और चाहने पर भी कोई निकट सम्बन्धी ऐसा नज़र नहीं आया जो उन अनाथ बहन-भाइयों को सहारा दे सके। विशाखा उस समय मैट्रिक में पढ़ती थी। स्कूल के हैडमास्टर से आज्ञा ले वह प्रातः और संध्या ट्यूशन पढ़ाती थी। जिस कोठी में कमरा लेकर रह रही थी वहां के बर्तन दोनों समय साफ करती और जो माल-किन दे देती लाकर अपने तीनों बहन-भाईयों को बराबर बांट देती। कभी-कभी इतनी कड़ी मेहनत के बाद भी उसे भूखे पेट सोना पड़ता था। मैट्रिक पास करते ही उसे एक आफिस में क्लर्की का काम मिल गया था। जिस दिन विशाखा को पहली तनख्वाह मिली वह बेहद खुश थी, बड़ा सुकून मिला था। कम से कम भाई-बहन भूखे तो न रहेंगे। पलंग नहीं तो ज़मीन पर तो सुरक्षित सो ही लेंगे, फिर धीरे-धीरे सहकर्मी भी उसकी दयनीय परिस्थितियों से परिचित हो गए। सभी का स्नेह और सहानुभूति मिलने लगी। दफ़्तर के रहमदिल अफसर ने काफ़ी ओवर टाइम दिलाना आरम्भ कर दिया।

जिस घर में विशाखा रहती थी उसके मालिक का बेटा इंजीनियर था और वह धीरे-धीरे उसके बहुत पास आने लग गया था। पूरी साहनुभूति देता और उसके बहन-भाइयों को भी जी भर कर स्नेह देता। विशाख के छोटे भाई के ऐडमीशन के लिए उसने बहुत दौड़-धूप की और उसकी छोटी बहन को भी समय मिलने पर पढ़ाता और मदद करता। विशाखा को बड़ा सहारा मिलने लगा था अपना हर सुख-दुःख विशाखा उससे बांटने लगी थी। धीरे-धीरे जैसे वह उनके एक कमरे के मकान में आने लगा था, वैसे ही वह भी, उसकी कोठी में बिना किसी झिझक के आने लगी थी।

नवल की मां को अचानक लकवा मार गया और उसने बिस्तर पकड़ लिया पर विशाखा दिन-रात छुट्टियां ले ले कर उसकी सेवा करती। विशाखा की छोटी बहन भी अब देखभाल करने योग्य हो गई थी क्योंकि काफ़ी महीनों से वह किसी प्राइवेट नार्सिंग होम में काम करने लगी थी। पढ़ाई लिखाई में उसका खास मन नहीं था, इस कारण विशाखा ने भी उसे उसकी पसंद का काम करने की आज्ञा दे दी। फिर विशाखा किसी काम को छोटा या बड़ा नहीं मानती थी। बस काम तो काम ही होता है। दोनों भाई भी पढ़ाई में अच्छे थे। विशाखा बहुत पढ़ना चाहती थी परन्तु उसकी परिस्थितियां ही कुछ इस प्रकार बनती गईं कि वह इस तरफ़ बहुत कम ध्यान दे पाती थी। पर लगन थी सो किसी तरह समय निकाल-निकाल कर उसने बी.ए. भी कर ली थी। नवल की मां की सेवा

करती, देर रात तक उसके पास बैठी रहती और उसी कमरे की रोशनी में वह पढ़ती भी रहती। बड़े एकाग्र मन से वह अपनी पुस्तकों में डूबी रहती। सदा मुस्कुराती, काम करती गुड़िया-सी विशाखा सब के मन को भाती थी, सब की प्यारी थी।

नवल अपने आप बिना किसी प्रोत्साहन के विशाखा के प्रति आकर्षित हो उठा था। उसकी दृष्टि में वह एक आदर्श लड़की थी। मन ही मन वह चाहने लगा कि वह विशाखा से ही शादी करेगा। अपने मां-बाप से वह बहुत डरता था। फिर एक दिन उसकी मां लम्बी बीमारी के बाद चल बसी और वह यह सदमा बरदाश्त न कर सका। बहुत ही उदास रहने लगा। इसी उदासी के भावुक क्षणों में नवल ने विशाखा के सामने शादी का प्रस्ताव रख दिया। पर विशाखा तो इसके लिए तैयार न थी। वह नवल का सम्मान करती थी, बस इतना ही, उसके आगे उसने कभी सोचा भी न था। पर नवल ज़िद पर अड़ा रहा और वह भी धीरे-धीरे पिघलने लगी। लेकिन विशाखा ने साफ़ कह दिया कि वह अपने बहन-भाइयों को सैटल करके ही अपना विवाह करेगी। नवल ने बहुत से वायदे किये कि वह पिता समान उसके बहन भाइयों का ध्यान रखेगा, पर विशाखा को नहीं मानना था, वह नहीं मानी। समय तेजी से भाग रहा था। नवल के पिता उसकी मां की मृत्यु के बाद घर में बहू लाने को उतावले थे। एक दिन नवल पर उन्होंने काफी दबाव डाला, तो वह घबरा गया और हांफता हुआ सा विशाखा को अपनी बांहों में भर चूमने लगा और कहने लगा जब तक तुम हां नहीं कहोगी में तुम्हें नहीं छोड़ूंगा। विशाखा ने काफ़ी समझाया कि यह ग़लत है, तुम्हें अपने पिता की बात मान लेनी चाहिए। वह तुम्हारे लिए इतने अच्छे घर की लड़की का रिश्ता ला रहे हैं, लड़की सुन्दर है, अमीर है और विदूषी है। पर वह नहीं माना और विशाखा के कमरे से बाहर तब गया जब उसने हां कह दी।

विशाखा ने तो बड़ी मुश्किल से हां कही, पर नवल के घर में तूफान उठ खड़ा हुआ। देर रात तक उसके पिता गरजते रहे इतना डांटा, इतना डांटा कि नवल चुपचाप सिर झुकाये खड़ा रहा। प्रातः वह विशाखा के कमरे में पहुंच गये। खूब डांट पिलायी क्या यही हमारी रहमदिली का फल दिया है—हमारा नमक खाया और हमीं पर वार किया है। यह सब नहीं चलेगा। अभी अपना बिस्तर बोरिया उठाओ और निकल जाओ झोंपड़ियों में रह कर, तुम्हारी यह महलों के सपने देखने की हिम्मत ही कैसे हुई। यदि तुम सीधी तरह नहीं जाओगी तो तुम्हारे पीछे में गुंडे लगवा दूंगा। विशाखा छोटे तबके की लड़की नहीं थी बस परिस्थितियों ने ही आज उसे इस हालत में पहुंचा दिया था। इन्जीनियर पति पाने की बात उसने कभी सोची भी नहीं थी पर नवल का प्रेम और मर जाने की धमकी के आगे उसे झुकना पड़ा था। वह नहीं चाहती थी किसी का इकलौता पुत्र इस तरह आत्महत्या कर ले। बस इतने भर के लिए ही तो उसने 'हां' कह दी थी। वह बेबस-सी बहुत ही अपमानित हो उठी थी।

रातों रात विशाखा ने अपने बहन-भाइयों को समझा बुझा कर दूर झोंपड़ पट्टी में एक झोंपड़ी किराये पर ले कर सारा सामान उठवा लिया। वह नवल का सामना नहीं करना चाहती थी। दफ़्तर में भी नवल ने मिलने की कोशिश की पर विशाखा ने साफ इन्कार कर दिया। मगर काल का क्रूर चक्र चल रहा था और विशाखा उसके चक्र में फंसती जा रही थी। जिस औरत ने उसे रातोंरात झोंपड़ पट्टी में झोंपड़ी दी वह अच्छी औरत नहीं थी। इसका आभास उसे कुछ ही दिनों में होने लगा था। उसने दूर कमरा ढूंढ़ने की काफी कोशिश की पर कमरा क्या बड़े शहरों में इतनी जल्दी मिलता है। वह औरत बड़ी घाघ थी। उसकी थैली में तो विषधर सांप लपलपाते रहते थे। वह औरत हर पल अपने एहसानों का बदला लेना चाहती थी। विशाखा बेहद घबरा गई थी। एक दिन तो उस औरत ने विशाखा को साफ-साफ कह दिया—'यदि सुख से रहना चाहती है, और अपने बहन-भाइयों को कुछ बनाना चाहती है तो बस शरीर का सौदा कर। इससे सस्ता और कोई सौदा नहीं होता, शरीर भी अपना और पैसा भी अपना।' विशाखा को काटो तो खून नहीं।

उसी दिन पता चला कि नवल ने अपनी जिद्द रखने के लिए आत्महत्या करने का प्रयास किया था। वह अस्पताल में है। बेहोशी में भी वह विशाखा का नाम पुकार रहा था। विशाखा उस दोमुंही सर्पिणी से भी घबरा गई थी और नवल की आत्महत्या के प्रयास ने उसे बहुत ही विचलित कर दिया था। विशाखा बहुत रोई थी और संध्या के समय भागती हुई सीधी वह अस्पताल पहुंची और नवल को खूब ढाढ़स बंधाया—देखो हम दोनों एक होने का वायदा कर चुके हैं। हम कभी अलग नहीं होंगे। समाज नहीं मानता तो क्या, हम भी समाज को नहीं मानेंगे। दोनों ने बहुत ही भावुक क्षणों में कसमें खाईं कि हम कभी अलग नहीं होंगे। धीरे-धीरे तुम्हारे पिता जी भी मान जायेंगे, और फिर मैं भी तो तब तक अपना कर्तव्य पूरा कर लूंगी। इस जिन्दगी से निज़ात पा सकूंगी। चलते-चलते विशाखा ने एक लम्बा भाषण झाड़ दिया था, कि मां-बाप का सम्मान करना चाहिए। उन्होंने हमें जन्म दिया है, इसका ऋण तो उतारना ही चाहिए। नवल यह सब सुन ठहाका मार कर हंसने लगा था 'अरे! तुम्हें तो सती-सावित्री या धर्मात्मा होना चाहिए था, और नहीं तो कम से कम कालिज में प्राध्यापिका तो लग ही जाना चाहिए था। फिर से धर्मयुग लौट आता शायद, क्यों ठीक है न फिर से जीने की चमक नवल की आंखों में उभरने लगी थी। यह सब विशाखा को अच्छा ही लगा था वह किसी के काम तो आयी।

काफी दिन तक नवल नहीं मिला तो विशाखा का मन घबराने लगा और पूछताछ करने पर पता चला कि उसके पिता ने पिस्तोल की नौक पर नवल की मर्जी के खिलाफ, ढेर-सारे दहेज के लालच में उसकी शादी उसी घर में कर दी है जहां वह चाहते थे। पर सारे घर में भयंकर हंगामा उठ खड़ा हुआ है वह सुहाग-रात के दिन भी अपनी पत्नी के पास नहीं गया। सारा दिन घर से बाहर भटकता रहता है। फिर एक दिन इन्हीं खबरों के साथ विशाखा चुपके से वह झोंपड़-पट्टी छोड़ दी थी और किसी कोठी के गराज में रहने लगी थी वह अपने से अपने आस-पास के वातावरण से भागने लगी थी। अपने से अधिक अपनी बहन को लेकर चिन्तित थी। अजीब चक्र व्यूह में वह फंसती जा रही थी।

नवल एक दिन राह-चलते मिल गया और वहीं विशाखा की बांह पकड़ ली, छोड़ना ही न चाहता था। विशाखा ने बहुत अनुनय-विनय की पर वह नहीं माना और किसी होटल में खींच ले गया। घंटों दोनों अपना दुःख बांटते रहे। विशाखा ने नवल को समझाया कि एक औरत को दूसरी औरत का हक छीनने में बहुत पीड़ा होती है। और अब तुम उससे विवाहित हो, तुम्हें यह सब नहीं करना चाहिए। नवल कह रहा था 'यह विवाह नहीं अत्याचार है। जिसे मेरा मन नहीं स्वीकारता उसे में तन कैसे दे दूं।' नवल बार-बार आत्महत्या की बात करता रहा और विशाखा, जो सच में उसे प्यार करने लगी थी, दहल गई। ऊपर से कठोर बनी रही।

विशाखा ने झूठ ही यह आश्वासन दे उसे घर भेजा कि वह उसे मिलती रहेगी। पर उसने अगले ही दिन से मिलना-जुलना एकदम बन्द कर दिया। वह आया तो उसे लौटा दिया। क्रूर बन गई। केवल नवल के सुखद भविष्य को लेकर, पर अन्दर ही अन्दर जो पीड़ा वह सह रही थी, इसका अन्दाजा कोई नहीं लगा सकता था। वह बस यही महसूस करती थी कि अब वह केवल एक लाश है जिसे उसे अपने ही कंधों पर लाद कर आगे ले जाना है...शायद दूसरे जन्म की संधि तक।

नवल अब जीना नहीं चाहता था। उसने एक बार फिर ढेर-सारी नींद की गोलियां खाकर आत्महत्या की कोशिश की अजीब बात है कि उसे हर बार अमीर बाप 'स्टामक वाश' करवा के बचा लेता था। पर वह होश में भी और बेहोशी में भी विशाखा का नाम लेता था। सब कुछ सुना था पर विशाखा की फिर हिम्मत न पड़ी उसे मिलने की। आगे ही जाने किन पापों का बदला वह चुका रही थी, एक और पाप उससे नहीं होगा। वह किसी बेकसूर लड़की के साथ ऐसी दुश्मनी कभी नहीं करेगी। पर कभी-कभी नवल के अमीर बाप पर, बहुत गुस्सा आता और मन ही मन वह उसे बददुआ दे बैठती। पर इससे क्या बनता बिगड़ता है।

विशाखा की बहन ने प्राइवेट नर्सिंग होम के एक अटैंडैंट से मन्दिर में जा कर शादी कर ली थी। फिर बड़ी दिलेरी के साथ बहन से आशीर्वाद लेने खड़ी हुई थी। दो पल को विशाखा हैरान हुई, फिर आगे बढ़ कर आशीर्वाद दिया और मां की निशानी में से दो चूड़ियां उसके हाथ में पहना कर विदा कर दिया। मन ही मन खुश थी 'चलो जो वह न कर सकी, छोटी ने कर दिखाया ...आखिर यह उसकी जिन्दगी है। कम से कम परिस्थितियों ने उसे कायर तो नहीं बना दिया है, यही अच्छा है। दोनों भाइयों को बुरा लगा था पर विशाखा उस रात पहली बार निश्चिन्त हो सो पाई थी। उसके मन पर हर पल पड़ी रहने वाली भय की काली छाया घुलने लगी थी।

काम से लौट कर थकी हारी-सी विशाखा अभी कपड़े ही बदल रही थी कि किसी ने द्वार खटखटाया। द्वार खोल कर देखा तो हैरान परेशान रह गई। नवल की पत्नी सामने थी। दूसरे ही पल कुछ सम्भलते हुए उसने कहा 'आइये भाभी आइये।'

'मुझे भाभी क्यों कह रही हो...कुछ कहना ही चाहती हो, तो बहन कहो।' विशाखा हैरान-सी, भौंचक, देखती जा रही थी। तभी नवल की पत्नी ने अपनी बात की कड़ी जोड़ते हुए कहा 'मैं सब जानती हूं, इसीलिए कह रही हूं कि यदि में भाभी हूं तो नवल तुम्हारा भाई लगा। पर यह सत्य नहीं है। जिन सम्बन्धों को हृदय न स्वीकारे उन्हें जुबान पर लाना भी पाप है। खैर! साफ कहूं तो मैं तुम से एक समझौता करने आई हूं...क्योंकि इसके सिवाये कोई चारा नहीं।'

'कहिए'।

'यह समझौता केवल तुम्हारे और मेरे बीच होगा।'
'हां'।

'तुम नवल की पत्नी होगी और मैं रखैल।'

विशाखा को अजीब धक्का लगा, यह क्या कह रही है। 'नहीं यह कभी नहीं हो सकता।'

'नहीं विशाखा! यही मेरी नियति है...तुम्हें नवल की जिन्दगी के लिए और मेरी खुशी के लिए यह सब मानना होगा। मैं तुम्हारी राह से हट नहीं सकती, क्योंकि मैं अपने मायके लौट नहीं सकती। मेरे मायके में मेरी सौतेली मां का राज्य है और वह मुझे ज़िन्दा न छोड़ेगी। अगर बच भी गई तो फिर उसी की तरह—,हां उसी की तरह मेरी रातें दूसरों की बाहों में होंगी। मैं इस तरह की काल-गर्ल बन कर जीने से बेहतर समझती हूं कि अपने ही पति की रखैल बन जाऊं। एक और भी वायदा करती हूं। कि मौका मिलते ही तुम्हारी शादी नवल से करवा अलग हट जाऊंगी। यह समझौता मैं जीवन भर के लिए नहीं बस कुछ सालों के लिए ही चाहती हूं। दो बहनें जैसे सुख-दुःख बांट लेती हैं वैसे ही हम भी बांट लेंगे।'

विशाखा स्तब्ध की स्तब्ध रह गई। उसे लगा कितनी चालाक है यह औरत जो चाहती है सांप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे। पर दूसरे ही क्षण लगा कि वह चालाक नहीं महान् है। भला कौन बांटता है अपने पति को इस तरह, केवल अपने पति की खुशी के लिए ही। विशाखा मान गई। फिर बार-बार मिलने का वायदा कर, उसने नवल से भविष्य में आत्महत्या न करने की सौगन्ध ले ली।

नवल के पिता की अचानक हृदय रोग से मृत्यु हो गई और विशाखा फिर से उसी कमरे में लौट आई थी। विशाखा ने जाने क्यों यूं दूसरी औरत होना स्वीकार कर लिया था। वह बात करने पर कहती 'मुझे' इस स्थिति में बड़ा सुख महसूस होता है, किसी को ज़िन्दगी देने के काबिल तो हूं। लोग तरह-तरह की बातें करते...पर वह मौन सब झेल जाती। अब नवल कभी-कभी दबी आवाज में विशाखा की शादी की बात करता है, पर वह जानती है यह सत्य नहीं है। वह हृदय से उसे चाहता है और उसका चला जाना उसकी मौत से कम महंगा नहीं होगा। वह विशाखा के एक इशारे पर सब कुछ न्यौछावर कर सकता है। नवल की पत्नी कभी उन दोनों के मध्य नहीं आती वह सब समझ चुकी थी और मन-प्राण से अपना समझौता निभा रही थी। सब जगह नवल की पत्नी बन कर घूमती और लौट कर उधार ली हुई वस्तु के समान विशाखा को पूरा का पूरा लौटा देती। अजीब सी स्थिति में दोनों जी रही थीं। कोई फैसला न कर पाई थी कि दूसरी औरत होने का दर्द कौन झेल रही है।

एक दिन अजीब धमाका हुआ और नवल की पत्नी छत से गिर गई। आपरेशन हुआ तो पता चला कि अब वह न चल-फिर सकेगी और न ही मां बन सकेगी। खैर! मां बनने की तो चिन्ता किसे थी...समस्या थी कि वह किस पर बोझ बने... बने या न बने। अब उसकी आत्महत्या करने की बारी थी।

नवल की पत्नी ने मन में सोचा था, समझौते को वास्तविकता का रूप देने का मौका आ गया है। विशाखा को बुला कर उसने सब समझा दिया और कहा मैं कल ही वकील को बुलाकर, तलाक के कागज़ तैयार करवाती हूं। बस मुझे किसी नर्सिंग होम में डाल दो और जब तक जिन्दा रहूं खर्चा देती रहना। विशाखा ने उसे अपने हृदय से चिपका लिया और कहा 'यह कभी नहीं हो सकता दीदी...यह बहुत बुरा हुआ पर लगता है हमारे अभिशाप की मुक्ति इसी में थी...अब हम दोनो पत्नियां बनकर इस घर में रहेंगी। आपका इलाज होगा, में आपकी सेवा करूंगी और आप फिर से चलने-फिर लगेंगी। हां, कल वकील को जरूर बुलायेंगे पर सिर्फ इस लिए कि आप की सेवा के लिए, देखभाल के लिए नवल की दूसरी शादी आवश्यक है।'

विशाखा अपने कमरे में लौट गई थी और सोच रही थी कुछ दिन पहले तक उसके लिए सिर्फ 'दूसरी औरत,' का एक ही विशेषण बचा था, वह चाह कर भी पत्नी नहीं बन पाई थी। टूटी ज़िन्दगी, जिसमें कोई उमंग या तरंग न थी। बस वह अपने को बलिदान कर नवल के साथ चली आई थी एक अज़ीब समझौते के तहत फिर डोर से कटी पतंग बन कर हवा के थपेड़े में तितर-बितर हो जाने से (काल गर्ल या वेश्या की नियति भोगने से) अच्छा था कि किसी एक की होकर रह जाती, बस यही होता न कि मन भर जाने पर वह उसे मनमाफिक उड़ाएगा तो चलो यह भी सही-उड़ना तो नारी का धर्म ही है। जो चाहे उसे जिस ढंग से उड़ा ले जाये। परिस्थितियों की हवा कुछ अजीब होती है जो नारी को सदा से उड़ाती आ रही है... कल भी यही था, आज भी यही है और शायद कल भी यही होगा। पर आज जो हवा पलट कर बहने लगी है वह अविश्वसनीय है। नारी ने नारी को समझा, सहारा दिया, सहानुभूति दी, अधिकार दिया, यही वह समझ न पा रही थी।

वकील आया। इधर परिवार वाले नये-नये रिश्ते लाने का आश्वासन देने लगे उसी नवल की पत्नी ने अगले ही दिन किसी से पूछे बिना पंडित को बुला कर चुपचाप विशाखा और नवल की शादी करवा दी। पता चलने पर सारे घर में प्रलयंकारी तूफान उठ खड़ा हुआ, पर उसके एक ही शब्द से सब शान्त हो गया 'मेरा पति है, कोई जायदाद नहीं...जिसे चाहूंगी उसे ही सौंपूंगी। जायदाद बांटने का समय तो अभी दूर की बात है... भगवान न करे इसकी जायदाद पर भी आप में से किसी की नज़र पड़े, इसी का वारिस भोगे यही प्रार्थना है।' फिर एक लम्बी सांस लेते हुए उसने विशाखा के दमकते सिंदूर को चूम लिया था और कान में धीरे से फुसफुसाई थी 'विशाखा! काश इस धरती का यह नारी अभिशाप यहीं खत्म हो जाये। नहीं तो एक दिन इस धरती पर केवल 'दूसरी नारी' ही होगी, पत्नी का नामोनिशान ही मिट जायेगा।" पर अज़ीब है यह नारी रूपी धरती जो ना जाने कैसे-कैसे कहर सह जाती है...क्या उसे बदलना न होगा, प्रतिकार न लेना होगा क्या वह हमेशा अपंग ही होती रहेगी।' विशाखा ने ज़ोर से कहा था कि हम कल ही विलायत तुम्हारे इलाज के लिए जा रहे हैं—हम तीनों बस। बस सब तरफ मौन फैला था और बीच में पुल सा बन गया था—आंसुओं का—जो बहना भूल गये थे, बस पुल से जुड़े ये नेत्र मात्र। दूसरी औरत होने का सुख होता है क्या? एक प्रश्न था। होता ही होगा शायद, तभी तो यह सब हुआ।

—284/16-ए, चंडीगढ़

□ □ □

पंजाब को उर्दू काव्य साहित्य का अवदान

□ प्रो. आज़ाद गुलाटी

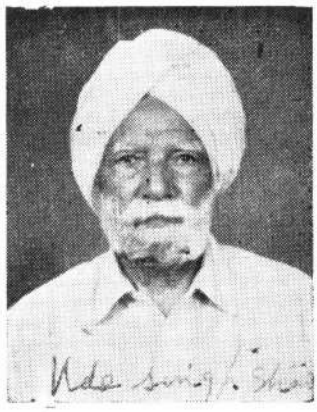
पंजाब के आंगन में सदैव ही उर्दू साहित्य का विकास हुआ है। जमील जालिबी के कथन अनुसार "उर्दू की परम्परा और इतिहास में पंजाब इस प्रकार सम्मिलित है जिस प्रकार मनुष्य की रगों में दौड़ते खून के सफेद कण।" प्रो. महमूद शेरानी ने यह बात स्पष्ट रूप से सिद्ध कर दी है कि पंजाब में कविता गद्य से पहले लिखी जाने लगी। सच तो यह है कि उर्दू नज़्म का प्रारम्भ ही पंजाब से हुआ और फिर उर्दू कविता की शायद ही कोई ऐसी धारा हो जिसमें पंजाब का योगदान न रहा हो। हज़रत अमीर खुसरो का तो यह विचार है कि उर्दू का पहला 'दीवान' पंजाब ही में लिखा गया। यद्यपि 1857 तक दकन, दिल्ली और लखनऊ में उर्दू साहित्य के केन्द्र इतने प्रबल रहे कि इस समय तक के उर्दू साहित्य का इतिहास अधिकतर इन्हीं केन्द्रों से सम्बन्धित है। फिर भी ऐसे कवि हुए हैं जो इन साहित्यिक केन्द्रों से दूर, पंजाब में रह कर उर्दू कविता, विशेष तौर पर उर्दू ग़ज़ल की रचना और इसका प्रसार करते रहे। इन ग़ज़लों के नमूने पंजाब में ग्यारहवीं शताब्दी से ही मिलना शुरू हो जाते हैं। बारहवीं और तेरहवीं शताब्दियों में रखेता ढंग का काव्य-सृजन सबसे पहले पंजाब ही में हुआ और इसके लिखने वालों में शैख़ फरीद, शैख़ उसमान, शैख़ जुनीद और मुनशी वली राम के नाम प्रमुख हैं। सूफी रंग की ये नज़्में अधिकतर 'मुरबा' या 'मुखम्मस' के आकार में लिखी जाती थीं। 1675 में अफ़ज़ल पानीपती ने बारहमासे की परम्परा में 'बकट कहानी' लिखी जिसमें उन्होंने स्त्री के मुख से विरह की वेदना का बहुत प्रभावशाली चित्रण किया है। 'फिदवी' लाहौरी और गुलाम कादिर ने भी कविताएं लिखीं। मुरादशाह लाहौरी सम्भवतः उर्दू के पहले कवि हैं। जिन्होंने लखनऊ की भाषा के बीज पंजाब में बोये। 'अपनी मसनवियों 'मगसनामा' और 'मूशनामा' में प्रतीकात्मक शैली में अपने युग के सामाजिक जीवन को प्रकट किया और कुरीतियों पर गहरा कटाक्ष भी किया। अठारहवीं शताब्दी में 'मरसिया' को साहित्यिक स्तर प्रदान करने में सिकन्दर पंजाबी की देन महत्वपूर्ण है। इनके अतिरिक्त मुहमद फ़ाज़िल बटालवी, मुहमद जान, बुद्धसिंह और खुफिया बेगम ने भी नज़्में लिखीं।

परन्तु पंजाब में उर्दू कविता के एक नये युग का प्रारम्भ 1857 में हुआ। इस वर्ष भारत के पहले स्वतन्त्रता संग्राम ने उत्तरी भारत में ऐसी राजनैतिक तथा सामाजिक स्थिति उत्पन्न कर दी कि दिल्ली और लखनऊ के साहित्यिक केन्द्र उजड़ने लगे। पंजाब में उत्तरी भारत से उर्दू-काव्य-धाराएं आने लगीं और लाहौर ने एक महत्वपूर्ण साहित्यिक केन्द्र का रूप ले लिया। 1857 के बाद उर्दू शायरी का कोई भी मोड़ ऐसा नहीं है, सामाजिक और विद्रोहिक चिन्तन और चेतना का कोई भी साहित्यिक पहलू ऐसा नहीं है जिसमें पंजाब का महत्वपूर्ण योगदान न रहा हो। 1857 के बाद उर्दू शायरी का इतिहास अधिकतर पंजाब के उर्दू साहित्य का ही इतिहास है। पंजाब में इस युग के सबसे महत्वपूर्ण उर्दू कवि ख़्वाजा अलताफ़ हुसैन 'हाली' हैं। वह सर सय्यद अहमद खां के सुधारिक, सांस्कृतिक, सदाचारिक एवं सामाजिक आन्दोलनों से बहुत प्रभावित थे। और इन्हीं प्रभावों के अधीन उन्होंने उर्दू ग़ज़ल को प्रचलित रवैयों से मुक्त कराने का प्रयास किया ताकि यह उनका संदेश समोने के योग्य हो सके। उन्होंने ग़ज़ल के क्षितिज को विस्तृत किया और भविष्य की उर्दू ग़ज़ल के लिये राह हमवार की। यह गौरव भी पंजाब ही को हासिल है कि 'हाली' ने अपनी 'मुस्सदस' द्वारा उर्दू शायरी में कौमी तथा वतनी कविताओं की दाग़—बेल डाली और 'मुकद्दमा-ऐ-शेरो—शायरी' लिखकर उर्दू शायरी के स्तर को आंकने और उसे समझने और समझाने के लिए नई राहों की खोज का प्रयास किया 'हाली' ने उर्दू शायरी को कौमी, सामाजिक तथा सदाचारिक विषयों को व्यक्त करने का सामर्थ्य प्रदान किया और एक ऐसी धारा शुरू की जिसके एक महत्वपूर्ण कवि बाद में मुनशी तिलोक चन्द 'महरूम' हुए जिनकी कविताओं ने समस्त उर्दू जगत में कई नसलों का साथ दिया।

'हाली' के बाद पंजाब में सबसे महत्वपूर्ण उर्दू काव्य-स्वर मुहमद इक़बाल का है। यह नाम समस्त उर्दू शायरी के प्रमुख नामों में से है। सच तो यह है कि उनकी कविता ही से उर्दू कविता के आधुनिक युग का प्रारम्भ होता है। पंजाब को यह गौरव प्राप्त है कि उसकी धरती पर इक़बाल जैसा कवि पैदा हुआ जिसकी कविता की धाक टैगोर और ग़ालिब की कविता की तरह सारे संसार में बैठ गई। 'हाली' ने उर्दू शायरी में विषयों के प्रसार का जो प्रयास आरम्भ किया था, इक़बाल ने उसे पूर्ण किया। उर्दू शायरी पहली बार इक़बाल ही के हाथों जीवन के विशेष दर्शन को व्यक्त करने का एक शक्तिशाली साधन बनी। उन्होंने ग़ज़ल को भी नई शैली प्रदान की और



जोश मलिस्यानी



उदय सिंह शाइक



साहिर लुधियानवी



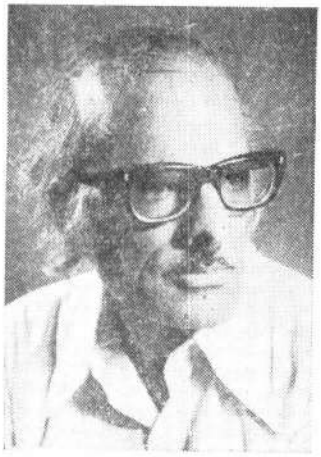
नरेश कुमार 'शाद'

इसके सीमित—से नज़र आने वाले कैनवस में रंगा-रंगी की ऐसी सम्भावनाएं पैदा की कि उर्दू ग़ज़ल प्रचलित शैली और भाषा के घुटे-घुटे से वातावरण से निकल कर खुली फ़ज़ाओं में नव-जीवन के गौरव की भावना से उन्मुक्त सांस लेने लगी। इकबाल की कविता में मज़दूर, किसान, इन्कलाब और विद्रोह के तत्वों ने उर्दू कविता में "तरक्की-पसन्द तहरीक" के लिए उचित वातावरण पैदा करने में बहुत सहायता की। साथ ही इकबाल की कविताओं ने उर्दू-कविता में देश-प्रेम की शायरी की बुनियाद को सुदृढ़ भी किया।

1935 के आस-पास एक बार फिर भारत के सामाजिक तथा सभ्याचारिक वातारण में हल-चल पैदा हुई जिसने 'तरक्की-पसंद तहरीक' को जन्म दिया। इस तहरीक के प्रभाव से उर्दू शायरी में नई दिशायें खोजने और उसे रचनात्मक सुदृढ़ता देने में पंजाब के जिन अनगिनत कवियों ने योगदान दिया उनमें फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़', अहमद नदीम क़ासमी, 'साहिर' लुधियानवी, 'एहसान' दानिश आदि के नाम समस्त उर्दू जगत के लिए आदरणीय हैं। 'फ़ैज़' ने अपनी कविताओं में विशेष रूमानी वातावरण पैदा करके अत्याचार तथा लूट-खसोट के विरुद्ध एक ऐसी आवाज़ उठाई जो सुदृढ़ होते हुए भी नर्म थी। 'साहिर' लुधियानवी ने सामाजिक तथा आर्थिक असमानताओं के एहसास को अपनी शायरी के रुमानी तत्वों से कुछ इस प्रकार समो दिया कि यह असमानताएं मनुष्य के सभी दुःखों का कारण प्रतीत होने लगीं। 'कासमी' और 'दानिश' ने उर्दू शायरी को साहित्यिक सच्चाइयों और यथार्थ का साधन बनाने का सफल प्रयास किया। 'तरक्की-पसन्द तहरीक' 'उर्दू शायरी' की एक बहुत ही महत्वपूर्ण तहरीक है और इसके स्थापन तथा विकास के हर पहलू में पंजाब का योगदान अविस्मरणीय है।

इस तहरीक के दौरान ही 'हफ़ीज़' जलन्धरी और 'क़तील' शिफ़ाई जैसे कवि उर्दू शायरी की भाषा और इसके आकार में गीत जैसी ललक पैदा करने का प्रयास कर रहे थे और 'मीराजी' अपने अनूठे अन्दाज से उर्दू शायरी को एक ऐसी दिशा देने में जुटे थे जिस पर चलकर यह पूर्णतः नई और ताजा फ़ज़ाओं से परिचित हो सकी। सच तो यह है कि आधुनिक उर्दू शायरी में इस युग के पंजाब के उर्दू शायरों का योगदान उर्दू शायरी के नये युग के इतिहास का एक सुनहरा भाग है। नून. मीम. राशिद और उनके अन्य साथियों ने 'आज़ाद नज़्म' के ऐसे प्रयोग किये जो शीघ्र ही उर्दू नज़्म में गहरी तबदीलियों का साधन बने। लाहौर में 'हल्का-ए-अरबावे-जौक' और 'हल्का-ऐ-अरबावे इल्म' से सम्बन्धित कवियों में उदयसिंह 'शइक' कृपाल सिंह 'बेदार', गोपाल मित्तल, हरी चन्द्र 'अख़र' आदि सम्मिलित थे। इन सभी कवियों ने उर्दू शायरी में जो निजी योगदान दिया उससे किसी को भी इन्कार नहीं हो सकता। यह युग पंजाब में राजनीतिक उथल-पुथल का युग था और अख़बारों से सम्बन्धित कवियों में मौलाना ज़फर अली खां पंडित मेलाराम 'बफ़ा' 'शोरश' कशमीरी, आदि ने नित-बदलती हुई स्थितियों को कविता का रूप देने में कमाल हासिल किया।

1947 में जब भारत का विभाजन हुआ तो पंजाब के साहित्यिक और सभ्याचारिक व्यक्तित्व पर भी गहरा आघात लगा। पश्चिमी पंजाब से आने वाले उर्दू कवि भारत-भर में बिखर गये। इसलिए स्वतन्त्रता के कुछ वर्ष बाद तक पंजाब की उर्दू शायरी को केवल पूर्वी पंजाब की भौगोलिक सीमाओं तक ही सीमित रखना सम्भवतः उचित न होगा। पंजाब के जिन उर्दू कवियों ने पंजाब से बाहर रहकर भी उर्दू कविता में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया उनमें 'साहिर' लुधियानवी 'साहिर' होशियारपुरी, कंवर महेन्द्र सिंह बेदी 'सहर', नरेश कुमार 'शाद', पूर्णकुमार 'होश', विमल कृष्ण 'अश्क', बलराज कोमल, बानी, राजनारायण 'राज़' महेन्द्र प्रताप चांद, कुमार पाशी, कृष्ण मोहन जगन्नाथ 'आज़ाद' 'शबाब' ललित, कृष्ण कुमार 'तूर', 'अरमान' शहाबी, सुरेश चन्द्र 'शौक' आदि कितने ही नाम सम्मिलित हैं। इनमें वह



बिमल कृष्ण अश्क



प्रेम बारबर्टनी



प्रवीन कुमार अश्क



कृष्ण अदीब

कवि भी शामिल हैं जो 1966 में बने आधुनिक पंजाब की सीमाओं से बाहर रहकर उर्दू कविता लिखते रहे हैं।

1947 के बाद पंजाब में जिन कवियों ने उर्दू शायरी की शमा को रोशन रखा उनमें 'जोश' मलसियानी, मेलाराम 'वफ़ा' और रतन पंडोखी के प्रयासों को कभी नहीं भुलाया जा सकेगा। यह युग पंजाब में उर्दू के लिए दुर्भाग्यशाली था और ऐसे वातावरण में जब चारों ओर से अनिश्चितता की आंधियां चल रही थी, उर्दू शायरी की जोत को पंजाब में ज्वलित रखना आसान नहीं था। 'जोश' मलसियानी ने 'दाग़' की ग़ज़लों की परम्परा को पंजाब में बढ़ाया और ग़ज़ल के कलात्मक पहलुओं में निपुणता पर जोर दिया। इस रंग में ग़ज़लें लिखने वाले उनके शागिर्दों में 'नसीम' नूरमहली, 'कमाल' करतारपुरी, 'साहिर' सयालकोटि, 'दर्द' नकोदरी, 'कैस' जालन्धरी, 'हया' हरनालवी, 'अर्श' मलसियानी, पूर्ण सिंह 'हुनर', ऋषि पटियालवी जैसे प्रसिद्ध कवियों के नाम हैं। इनमें से कई कवियों के अपने शागिद हैं जिनमें शिवदयाल सहाब, कंवल मेरठी, राजेन्द्र नाथ 'रहबर', जिगर जालन्धरी, वफ़ा सय्याल, सुखदेव 'रश्क', खुमार जालन्धरी तासीर आदि के नाम शामिल हैं। कमालउद्दीन कमाल के शागिर्दों में प्रेम बारबर्टनी और डा. नरेश के नामों से उर्दू जगत भली-भांति परिचित है।

1960 के आस-पास जब उर्दू शायरी में आज के युग की पीड़ा, मानसिक वेदना, भय, अकेलापन आदि उभरने लगे तो पंजाब के उर्दू कवियों की कृतियों में भी इन सबका प्रतिबिम्ब मिलने लगा। ऐसे कवियों में नौ बहार 'साबिर', आज़ाद गुलाटी, प्रेम कुमार नज़र, कृष्ण अदीब, सुरेन्द्र पंडित सोज़, डा. नरेश, श्रवन कुमार वर्मा, सत्यपाल आनन्द, पेंटर बावरी, तखत सिंह, सत्यनन्द शाकिर, महेश पटियालवी, मेहर गेरा आदि ने अपनी काव्य-कृतियों में आज के मनुष्य के आन्तरिक क्रन्दन, आधुनिक बोध और चेतनता को प्रकट किया है। इनमें से बहुत से कवियों के काव्य-संग्रह प्रकाशित होकर समस्त उर्दू जगत से आदर और सम्मान प्राप्त कर चुके हैं। अब तो पंजाब में उर्दू कवियों की एक नई पीढ़ी भी उसी वेदना को लेकर उभर रही है जिसमें प्रवीन कुमार अश्क, असलमत हबीब, 'तारिक', खालिद अफ़ज़ाल मलिक आदि शामिल हैं। यहां यह अनुचित न होगा यदि पंजाब के आधुनिक कवियों के कलाम से कुछ उदाहरण भी दे दिये जायें ताकि वर्तमान उर्दू कविता में उनके योगदान की एक झलक मिल सके। आधुनिक उर्दू ग़ज़ल में अपने अन्दर झांकने और अपने अस्तित्व की वेदनाओं को व्यक्त करने का प्रयास इन कवियों ने कुछ इस प्रकार किया है :—

मुझी पे खत्म हुई जुस्तजू की राहगुज़र
मिरे सिवा सरे-मंज़िल न कुछ मिला मुझको
—नौबहार 'साबिर'

जुस्तजू अपनी लिए फिरती थी बस्ती-बस्ती
जब किया गौर तो मैं अपने ही अन्दर निकला
—श्रवन कुमार वर्मा

वह एक शख्स जिसे उम्र-भर तलाश किया
मिला जो हमको, तो हम पास से गुज़र आये
—अफ़ज़ाल मलिक

फैला हूं मैं जमानों मकां की हदों से दूर
जब से खुद अपने आप में सिमटा हुआ हूं मैं
—आज़ाद गुलाटी

औद्योगिक युग से उत्पन्न टूट-फूट, तृष्णा और असुरक्षा के भाव आधुनिक ग़ज़ल में बार-बार उभर कर सामने आये हैं।

पंजाब के कवियों ने इन भावों को इस प्रकार व्यक्त किया है—

दुश्मने-जां था कड़ी धूप में जलता सूरज
दुःख के सहरा में कहीं पेड़ का साया होता

—कृष्ण अदीब

ऐ प्रेम इसकदर भी अकेला कोई न हो
मैं खुद भी अपने साथ नहीं, दूसरा तो क्या

— प्रेम बारबर्टनी

अब ढूंढ़ जुगनुओं से भरी मुट्ठियां 'नज़र'
किसने कहा था जागती आंखों को ख्वाब दे।

—प्रेमकुमार नज़र

उससे बिछड़ूं तो सदाओं के भंवर में भटकूं
मुड़ के देखूं तो फ़ज़ाओं में घुटन हो जैसे।

—सुरेन्द्र पंडित सोज़

यह वह अजीब दौर है जिसमें हर एक शख्स
खुद अपने ही लहू में रंगा हाथ है मियां

—असलम हबीब

यह और ऐसे अनेक शेर आज की उर्दू ग़ज़ल के मिज़ाज और उसकी पहचान का हिस्सा हैं। नज़में लिखने वाले पंजाब के उर्दू कवियों में प्रेम बारबर्टनी, कृष्ण अदीब, डा. नरेश, तख्त सिंह, पेंटर बावरी आदि की नज़मों को आधुनिक उर्दू नज़्मों के सरमाये में सत्कार की दृष्टि से देखा जाता है।



आज़ाद गुलाटी

उर्दू कविता का कोई रूप हो, कोई विचार धारा हो, कोई शैली हो, पंजाब के उर्दू कवियों का योगदान शुरू ही से सराहनीय रहा है सच तो यह है कि कई बार तो पहल भी पंजाब ही के उर्दू कवियों की है। यह बात निस्संदेह कही जा सकती है कि पारम्परिक कविता हो या आधुनिक देशभक्ति की भावना से भरपूर कविता हो या जीवन-दर्शन को व्यक्त करने वाली, तरक्की-पसन्द तहरीक की कविता हो या समाचारपत्रों में प्रकाशित होने वाली सामयिक कविता, नज़्म, ग़ज़ल, गीत, दोहा, रुबाई, कता हो या मुस्सदस, पंजाब के उर्दू कवियों का योगदान सदा ही महत्वपूर्ण रहा है। यहां तक कि पंजाब के कवियों के योगदान के बिना उर्दू कविता का इतिहास लिखना सम्भव ही नहीं है।

—वरिष्ठ प्राध्यापक, अंग्रेजी विभाग, गवर्मेंट कालेज, नाभा

(हाल मुरीदों का कहना) पृष्ठ 18 का शेष

तड़प नहीं आ पाती और न वह धार ही आ पाती है जो 'जेनुइन' लेखन की जान है।" उनकी प्रतिक्रिया तीखी थी, "यह बात तो ठीक नहीं कि जो लोग नौकरी करते हैं और लिखते भी हैं, वे सब शौकिया ही लिखते हैं। मैंने सारी उम्र नौकरी की है, फिर भी समझता हूं कि मैंने जो लिखा है वह उन लोगों से किसी तरह कम नहीं—न मात्रा में और न क्वालिटी में—जो अपना पूरा समय लेखन को ही देते हैं। यह इस पर भी निर्भर करता है कि जीवन में आपकी प्राथमिकताएं क्या रही हैं। मैं अपने भीतर के साहित्यकार को हमेशा पहले नंबर पर रखता हूं।"

चर्चा को समालोचना की ओर मोड़ते हुए मैंने पूछा, "अपने आलोचकों और पाठकों की प्रतिक्रियाओं के खट्टे-मीठे अनुभव तो आपको खूब प्राप्त हुए होंगे। क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि समकालीन लेखकों की आलोचनाओं के बजाए यदि लेखक तक उसके प्रबुद्ध पाठकों की प्रतिक्रिया पहुंचती रहे तो उसके लेखन को सही दिशा मिलने की संभावनाएं बढ़ जाती हैं।"

सहमति के स्वर में वे बोले, "मैं तो यह मानता हूं कि समकालीन लेखकों की चर्चा नहीं करनी चाहिए। उनको पढ़ लेना चाहिए और छोड़ देना चाहिए। दरअसल हम सकालीन लेखकों के इतने निकट होते हैं कि उनका सही मूल्यांकन कर नहीं पाते। पढ़ने और उन पर लिखने के बीच अन्तराल होना चाहिए। पंजाबी में तो मुझे बहुत बार निराशा ही हाथ लगी है। मेरी जो पुस्तकें यूनिवर्सिटियों में पाठ्यपुस्तक के रूप में पढ़ाई जाती हैं उन पर लिखे नोट्स जब कभी देखता हूं तो मुझे बड़ी परेशानी होती है। लेकिन इधर कभी पाठकों की जब कोई प्रतिक्रिया प्राप्त होती है तो हैरानी होती है और खुशी भी कि लोग कितनी गहरी नज़र रखते हैं। मेरे पास अक्सर पाटकों के पत्र आते रहते हैं और उन्हें पढ़कर मुझे खुशी होती है। एक बार मेरी एक कहानी में से एक संपादक ने एक वाक्य अनावश्यक समझ कर हटा दिया। उसी कहानी को पढ़ कर मेरी एक पाठिका का पत्र पाकर हैरानी हुई। उसने लिखा था कि उसने मेरी कई कहानियां पढ़ी हैं। उसे मेरी कहानियां पढ़ते कभी कोई झटका नहीं लगा है। पर इस कहानी में अमुक स्थान पर झटका महसूस हुआ है।"

आजकल 'कमिटमैंट' शब्द की बड़ी दुहाई दी जा रही है और कहा जा रहा है कि लेखक को 'कमिटेड ज़रूर होना चाहिए। इसलिए चर्चा को समेटते हुए मैंने पूछा, "आपके ख्याल से क्या हर लेखक का 'कमिटेड' होना ज़रूरी है? यदि ज़रूरी है तो किस के प्रति? अपने देश और समाज के प्रति लेखक का क्या दायित्व है?" उनका उत्तर दो-टूक था, "लेखक को अपने प्रति कमिटेड होना चाहिए। सत्य और न्याय के प्रति कमिटेड होना चाहिए।" □

—सी-7/180, नवीन निकेतन, सफदरजंग डेवलप्मेंट एरिया, नई दिली-110016

बातों के धनी...

राजेन्द्र सिंह बेदी



कहानी की दुनिया में राजेन्द्र सिंह बेदी का नाम सदा याद रहेगा। उनकी लिखाई-पढ़ाई बस न होने के बराबर थी, ले दे कर इन्टर तक पढ़ सके। वातावरण भी कुछ ज्यादा उनको साहित्यकार बनाने में सहायक न था। पर जब 'बेदी' लिखने पर आये, तो ऐसी कहानियां लिखीं कि उर्दू कहानी को चार चांद लग गये और स्वयं उनका नाम अपने जीवनकाल में ही एक परम्परा बन गया।

उनकी कहानियों का पहला संग्रह 'दाना और दाम' 1936 में छपा। इसमें 14 कहानियां थी जिनमें 'भोला, और गर्म 'कोट' आदि आज भी प्रसिद्ध कहानियों में मानी जाती हैं। इस संग्रह के सम्बन्ध में प्रो. मुजीब एक जगह लिखते हैं कि "मैं इस किताब को कई वर्ष बगल में दबाये फिरता रहा। इसे बार-बार पढ़ता और इससे हर बार एक नया आनन्द प्राप्त होता। इसमें संदेह नहीं कि मैंने आज तक इतना अच्छा कहानियों का संग्रह नहीं देखा।"

इस संग्रह के बाद बेदी की कहानियों के सात और संग्रह, एक नाटकों का संग्रह और एक छोटा सा उपन्यास 'एक चादर मैली सी' छपा। यूं कहिए 'बेदी' ने पचास साल के साहित्य जीवन में लगभग 100 कहानियां और एक उपन्यास लिखा। इस तरह वर्ष में दो कहानियां लिखी गईं।

'बेदी' कहानी को एक महान कला मानते थे। और वह बड़े सोच-विचार के बाद किसी विषय पर कलम उठाते थे। लाहौर की बात है कि एक बार मण्टों ने जो कि स्वयं एक बहुत बड़े कहानीकार थे बेदी से कहा था कि "बेदी, तुम्हारी मुसीबत यह है कि तुम सोचते बहुत ज्यादा हो। तुम लिखने से पहले सोचते हो, लिखते हुए सोचते हो और लिखने के बाद सी सोचते हो।" बेदी बातों के धनी तो थे ही। तुरन्त कहा, "मण्टो भाई, तुम न कहानी लिखने से पहले सोचते हो, न लिखते वक्त सोचते हो, न लिखने के बाद सोचते हो।"

बेदी ने अपनी कहानियों के पात्र अपने आस-पास के जीवन से ही लिये जिनमें कई स्तर के लोग पाये जाते हैं। साले भाई हों, यरादानी जलाल हों या मिर्ज़ा हासिम संत राम हो या बाबू धनी राम, लाजवंती हो या जोगिया, प्रताप सिंह हो या संतासिंह माग्रेट हो या कादर, वे सब पात्रों को बड़े प्यार से पेश करते हैं और पात्र ऐसे जो अपनी छाप पाठक के हृदय पर छोड़ जाते हैं।

बेदी की कहानियों में ज्यादातर पंजाब की सुगंध है। यह सुगंध उनकी आखिरी कहानी तक मौजूद रही। हां जब वह

इन्द्रजीत लाल

बम्बई चले गये, तो फिर उस बड़े शहर की वासनायें, भावनाएं भी उनकी कहानियों में रचने लगीं। जब उनसे पूछा जाता कि आपकी कहानियों में पंजाबी लोग, उनका स्वभाव, उनके रस्मो-रिवाज़ बहुत ज्यादा मात्रा में मिलते हैं। तो बेदी कहते कि मैं खुद पंजाबी हूं और जब मेरा पात्र भी पंजाबी हो तो मेरी कहानी में पंजाब ही की सुगंध या बदबू भरी होगी।

बेदी जहां भी जाते चुटकलों का फौआरा छोड़ते जाते। वह दूसरों को खूब हंसाते। चाहे उनके चुटकुले या व्यंग्य की चोट उन ही पर पड़ती हो। यह चुटकला वे बहुत सुनाया करते थे "लाहौर में मेरे घर के सामने एक भैंस बंधी रहती थी, जिस पर मेरे कुछ मित्रों को बुरा मालूम होता था। एक दिन एक मित्र ने जब कुछ कड़ुवाहट दिखलाई, तो मैंने कहा— "भई, हिन्दुओं का प्रिय जानवर गाय है और मुसलमानों का प्रिय जानवर ऊंट, क्या हम सिखों को अपना प्रिय जानवर भैंस पालने का हक नहीं है।"

इसी प्रकार जब इनकी फिल्म 'दस्तक' रिलीज़ हुई तो उनके एक मित्र यूसक नाज़म ने पूछा कि आपने फिल्म का नाम दस-तक क्यों रखा, ग्यारह तक रखते, बल्कि बारह तक।

एक बार एक युवक उनके पास यह निवेदन लेकर गया कि वह उसे किसी फिल्म में काम करने का मौका दें। बेदी साहब

बोले—"भाई मैंने अपनी अगली फिल्मों की दस साल की योजना बना ली है। कलाकारों को भी चुन लिया है। इसलिए तुम्हें इस समय कोई मौका नहीं दिया जा सकता। हां, तुम चाहो तो दस साल बाद मुझे मिल लेना।"

यह बड़ा अजीब लगता है कि वह अपने मित्रों से सारा जीवन छेड़छाड़ करते रहे, पर वह अपनी कहानी और कला में सदा गम्भीर रहे।

अभी कुछ वर्ष पहले की बात है कि वह अपने एक मित्र के साथ समुद्र के तट पर टहल रहे थे। बेदी कद के ठिगने थे बस पांच फुट ही होंगे। और मित्र छह फुट के होंगे। उस समय तपती धूप में उनके मित्र पसीने से सराबोर थे लेकिन बेदी को कोई पसीना नहीं आ रहा था। मित्र ने मज़ाक करते हुए कहा "बेदी साहब, क्या वजह है कि मुझे पसीना आ रहा है और आपको नहीं।" बेदी ने मुस्कराते हुए कहा, "बात साफ है आप सूर्य से काफी निकट हैं।"

बेदी कहानीकार थे, वह उर्दू की साहित्य सभाओं में अवश्य जाते। चाहे वे सभा कहानियों की न भी हो। एक बार एक मुशायरे में बैठे थे कि 'वशीर बदर' को अपना कलाम सुनाने के लिए बुलाया गया। इस पर बेदी साहब ने आहिस्ता से एक मित्र से कहा "यार, हमने दर बदर, मुल्क बदर, शहर बदर, तो सुना ये वशीर बदर क्या होता है। इस पर मंच पर बैठे सभी लोग मुस्कराने लगे।

जीवन के आखिरी दिनों में बेदी कुछ धार्मिक से हो गये थे। बेदी बड़े नम्र, शरीफ और सज्जन पुरुष थे। उनकी इस बीमारी की अवस्था में मैंने उन्हें अपनी पुस्तक 'नग्मा-ए-रुह' भेजी। बेदी ने पुस्तक की स्वीकृति के साथ यह लिख भेजा—"मैं लकवे के कारण आपके पत्र का विस्तार पूर्वक उत्तर नहीं दे सकता, इसके लिए क्षमा चाहता हूं। इस पत्र से प्रतीत होता है कि लिखते समय उनका हाथ कांप रहा था।"

बेदी सैकड़ों मित्रों और पाठकों को छोड़कर चल बसे पर उनकी कहानियां, उनकी व्यंग्य भरी बातें वर्षों तक याद रहेंगी।

—डी-41 गुलमोहर पार्क, नई दिल्ली-49

पंजाब में रचित भक्ति साहित्य एक उपेक्षित अध्याय

□ **डा. नरेश**

सात नदियों से पांच और पांच से दो तक सीमित हुए पंजाब प्रदेश के इतिहास का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण परन्तु लगभग उपेक्षित अध्याय है—हिन्दी में रचित भक्ति-साहित्य। यदि आप यह स्वीकार करते हैं कि पवित्र वेदों की रचना सप्तसिंधु में की गई थी, ऋषि बाल्मीकि की तपोभूमि अमृतसर का निकटवर्ती क्षेत्र था और श्रीमद्भगवद्गीता की रचना कुरुक्षेत्र की पुण्यभूमि पर हुई थी तो आप मेरी इस मान्यता को स्वीकार करने में संकोच नहीं करेंगे कि जिस प्रदेश में अध्यात्म-ज्ञान अपनी चरम सीमा को जा पहुंचा हो, उस प्रदेश ने कैसा ही दुर्भाग्यपूर्ण परिवर्तन क्यों न देखा हो, वहां ज्ञान-धारा-प्रवाह के शुष्क होने में शताब्दियों का समय लगता है। अतः मैं ज्ञान की इस सरस्वती के लुप्त होने की बात को स्वीकार करते हुए भी यह मानने के लिए तैयार नहीं हूं कि सरस्वती निर्मूल हो गई होगी। अलोप हुई नदी पृथ्वी के गर्त में चली जाती है, परन्तु भूगर्भ शास्त्रियों के लिए उसे खोज निकालना कठिन तो हो सकता है, असम्भव नहीं है। इसलिए मेरा विश्वास है कि भक्ति साहित्य की उस धारा को, जो युगों-युगों से अपने अजस्र प्रवाह के साथ बहते-बहते लुप्त हो गई है, आज भी खोजा जा सकता है और हम अपनी धरोहर को प्राप्त करके गौरवान्वित हो सकते हैं।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी का समय भक्तिकाल के अभ्युदय का समय है। भक्ति साहित्य में सूर तथा तुलसी की महानता एवं लोकप्रियता के कारण यद्यपि हिन्दी के ब्रज तथा अवधी रूपों का स्वर काफी ज़ोरदार हो गया है लेकिन वास्तव में, हिन्दी के जिस रूप का स्वर पूरे भारत में फैल रहा है वह उसका 'सधुक्कड़ी' रूप है। यही वह सधुक्कड़ी हिंदी है जिसमें कहीं उत्तर प्रदेश के कबीर, रविदास तथा सेन का स्वर गूंज रहा है, कहीं राजपूताना के धन्ना और सुन्दरदास की भक्ति भावना कविता में मुखरित हो रही है, कहीं महाराष्ट्र के नामदेव अपनी 'वाणी' से वातावरण को सुगंधित कर रहे हैं और कहीं सिंध के सदना अपने मधुर स्वरों में इस सृष्टि के नियन्ता को स्मरण कर रहे हैं। हिंदी का यही रूप, ब्रजभाषा का पुट लिए ठीक इसी काल में पंजाब से मुखरित होता है

और गुरू नानक की 'वाणी' के रूप में पूरे प्रदेश को अपनी गरिमा से प्रभावित कर डालता है। गुरू नानक की 'वाणी' परम्परा का रूप धारण करके जब तीन शताब्दियों की यात्रा तय करती है तो हिंदी भक्ति साहित्य को 'गुरुग्रंथ साहिब' जैसा भक्ति साहित्य का अनुपम संकलन देकर मालामाल कर देती है।

'गुरू ग्रंथ साहिब' में संकलित सात गुरुओं और सोलह अन्य संतों की 'वाणी' से हिंदी जगत् परिचित है, अतः मैं यहां इसकी चर्चा नहीं करूंगा। यहां मेरी चर्चा का विषय पंजाब के उन अनेक संत-भक्त कवियों में कुछेक का वर्णन होगा, जिन्हें अभी तक धारा के रूप में संकलित करना तो दूर, ठीक तरह से पहचाना भी नहीं गया है। यहां सबसे पहले मैं जिस संत कवि की चर्चा करना चाहता हूं, वे हैं—**गुसाईं साईंदास**।

गुसाईं साईंदास

गुरु नानक के समकालीन, गुसाईं मत के प्रवर्त्तक, सगुण भक्ति के माध्यम से निर्गुण ब्रह्म की उपासना करने वाले तथा ज्ञान और भक्ति द्वारा जनसाधारण को शान्ति का मार्ग दिखाने वाले संत कवि गुसाईं साईंदास की 'वाणी' का यदि उचित मूल्यांकन हो तो वे उत्तरी भारत की संत परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी ही सिद्ध नहीं होंगे अपितु उनकी रचनाएं हिंदी भक्ति-साहित्य में एक नूतन आयाम की द्योतक भी बनेंगी। गुसाईं साईंदास की रचनाओं को, हिंदी भक्ति साहित्य की अन्य रचनाओं की तरह निर्गुण-सगुण की कोटियों में नहीं बांटा जा सकता बल्कि ये रचनाएं सगुण तथा निर्गुण दोनों के बीच संतुलन एवं सामंजस्य पैदा करती हैं। राम तथा कृष्ण के अवतारी रूप की स्थापना करके भी कवि साईंदास ने उन्हें निर्गुण ब्रह्म का रूप देकर तथा निर्गुण भक्ति-पद्धति के 'ध्यान' का महत्व स्थापित करके, हिंदी भक्ति-साहित्य को एक ऐसा मोड़ दिया है जो धार्मिक समन्वयवाद तथा साम्प्रदायिक सहिष्णुता का उज्ज्वल उदाहरण बन गया है।

गुसाईं साईंदास का जन्म सन् 1468 में, गुजरांवाला के निकटवर्ती गांव में हुआ था। उनके पिता का नाम मल्लिराय था, जो अपने क्षेत्र के अच्छे खाते-पीते घराने से संबंध रखते थे। साईंदास अभी पांच वर्ष के ही थे कि उनका विवाह निश्चित कर दिया गया और इसके दो वर्ष बाद उनकी शादी हो गई। बाल्यावस्था में ही उन्हें संत मुकुन्द दास जैसे गुरु की अनुकम्पा प्राप्त हो गई तथा वे घर-बार त्यागकर परमतत्व की खोज में निकल पड़े। अपने एक शिष्य 'बद्दो' के नाम पर गुसाईं साईंदास ने 'बद्दोकी गुसाईं, नामक गांव बसाया जो भारत-विभाजन तक गुसाईं पंथियों का तीर्थ स्थान रहा है।

गुसाईं साईंदास की तीन कृतियां उपलब्ध हैं—रत्न ज्ञान, वारि श्रीभागिवत की तथा अंत्रत बानी। ये तीनों कृतियां 'गुसाईं गुरुवाणी' नामक ग्रंथ के रूप में संकलित होकर प्रकाशित हो चुकी हैं। गुसाईं जी की इन रचनाओं में ज्ञान तथा भक्ति का समन्वित रूप उपलब्ध होता है। उनका ब्रह्म राम तथा कृष्ण के रूप में अवतार भी धारण करता है तथा फिर भी निर्भय, निरंजन, निराकार ही रहता है :—

निर्भो निरंजन निराकार।
नाम न अन्त अन्त नहीं पार।।

कवि साईंदास के निकट 'नाम' की बहुत महिमा है। वे नाम को जप, तप, संयम, कर्म और ध्यान से भी ऊंचा मानते है :—

जप तप संजम कर्म ध्यान।
सभ से ऊंचा तेरा नाम।।

उनके निकट यह संसार मिथ्या है तथा समस्त शरीर नाशवान है। मोहमाया में ग्रसित जीव यदि उस अनन्त प्रभु का स्मरण करता रहे तो वह जन्म-मरण के बंधन से मुक्ति होकर परम पद प्राप्त कर सकता है। योग साधना द्वारा अनहद नाद सुनने वाली आत्मा सांसरिक प्राणियों में हर तरह से वन्दनीय है तथा इसी साधना के द्वारा जीव 'सोऽहं' तक पहुंच सकता है :—

अगिम अगोचर अनिहद बानी।
क्या कहु कहो कहन की नाही अनिभै गति हैरानी।

श्री भगवान

वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित तथा प्रसिद्ध वैष्णव धाम पिण्डोरी के संस्थापक श्रीभगवान् महान संत कवि हुए हैं जिनकी 'वाणी' हिंदी साहित्य में वेदों-उपनिषदों के सारतत्व की सरल व्याख्या का ऐसा अध्याय खोलती है जिसमें अद्वैतवाद की सर्वत्र विद्यमानता के बावजूद राम भक्ति की ऐसी रसपूर्ण भागीरथी बहती दिखाई देती है जो मोहमाया से संतप्त प्राणियों के लिए अपार शान्ति तथा असीम संवेदना का भण्डार है। वेदों-उपनिषदों के सारतत्व के साथ-साथ लौकिक उपदेशों की जो छटा इस 'वाणी' में उपलब्ध है, उसमें न कबीर जैसी अक्खड़ता है और न सूरदास जैसी उदासीनता। यह 'वाणी' सहज साधारण रूप से अपने पाठकों को आत्मज्ञान के चक्षु प्रदान करके उनमें ब्रह्मज्ञान का नूर भरने वाली वाणी है।

श्री भगवान् का जन्म सन् 1493 में, गुरुदासपुर जिले के कान्होवान नामक गांव में हुआ था। उनके पिता का नाम तोताराम तथा माता का नाम मैनाजी था। बचपन से ही किसी प्रकार का सांसारिक मोह इनके मन में व्याप्त न होने के कारण श्री भगवान् कान्होवान के जंगलों में निकल जाते और एकान्त में बैठकर मनन किया करते। साधना के मार्ग पर कदम बढ़ाते ही उन्हें श्री कृष्णदास पयोहारी जैसे समर्थ गुरु की शरण प्राप्त हो गई, जिनसे विधिवत दीक्षित होकर श्री भगवान कान्होवान से आठ मील दूर पिण्डोरी के जंगलों में जाकर तपस्या करने लगे। भारत के वैष्णव मठों में, इनके द्वारा स्थापित 'पिण्डोरी धाम' को आदर सहित 'द्वार' के रूप मे स्वीकार किया गया तथा इसे 'श्री भगवन्नारायण द्वार' की संज्ञा देकर आचार्य रामानन्द के सैंतीस वैष्णव द्वारों में सम्मिलित किया गया।

श्री नारायण

इसी परम्परा का दूसरा महत्वपूर्ण नाम है श्री नारायण। हठयोग द्वारा तपाकर कंचन-सी काया को कुन्दन बनाने वाले महात्मा, पिण्डोरी धाम के दूसरे मठाधीश श्री नारायण ने वैष्णव धर्म के प्रचार के लिए जो 'वाणी' रची, उसका साम्प्रदायिक महत्व जो भी हो, साहित्य की दृष्टि से वह हिंदी की मूल्यवान धरोहर है। तीन सौ वर्ष पूर्व, अपनी रचनाओं द्वारा श्री नारायण ने सीधी-सादी भाषा में ज्ञान के तत्वों की व्याख्या करके तथा विषयासक्त जीवों को प्रभु भक्ति की राह दिखाकर प्राणीमात्र का जो कल्याण किया, वह श्लाध्य ही नहीं, स्तुत्य भी है।

श्री नारायण श्री भगवान् के शिष्य थे। इनका जन्म सुजानपुर के निकट विलरेडे नामक गांव में हुआ था। बचपन में ही श्री भगवान के स्नेह-भाजन होकर श्री नारायण ने हठयोग की साधना की। इसी साधना के बल पर वे जहांगीर द्वारा दिए गए विष के सात प्याले पीकर भी सहज रहे तथा मुग़ल सम्राट को उनकी 'करामात' का सिक्का मानना पड़ा। 'तुज़के जहांगीरी' में इस घटना का वर्णन उपलब्ध है। इनका गुरु-गद्दी प्राप्त करने का समय सन् 1622 है।

गुरु के स्नेह और शिष्य की निष्ठा का ऐसा सामंजस्य बैठा कि वैष्णव सम्प्रदाय में इन दोनों नामों को 'भगवान-नारायण' के संयुक्त नाम से जाना जाने लगा। यहां तक कि श्री भगवान् द्वारा स्थापित पिण्डोरी धाम भी इनके संयुक्त नाम से 'श्री भगवन्नारायण पीठ' हो गया। इन दोनों भक्त-कवियों की रचनाओं को 'श्री भगवन्नारायण वचन सुधा' के नाम से संकलित करके प्रकाशित किया जा चुका है। इस ग्रंथ में संकलित वाणी का अधिकांश भाग श्री नारायण की रचना है। श्री नारायण ने अपनी 'वाणी' में जीव, प्रकृति और ईश्वर के पारस्परिक संबंध को स्पष्ट करते हुए, कर्मबंध में बंधी आत्मा की मुक्ति का साधन बताया है कि मनसा, वाचा, कर्मणा सात्विक आचरण द्वारा मनुष्य मायापति ब्रह्म की अनुकम्पा प्राप्त करके सांसारिक जन्म-मरण के प्रहारों से सुरक्षित रह सकता है तथा इस प्रकार अंततोगत्वा उसकी आत्मा जन्म-मरण के बंधन से मुक्त होकर उसी प्रकार परमात्मा में विलीन हो सकती है जिस प्रकार पानी में पानी मिल जाए तो उसका अलगाव असम्भव हो जाता :—

तौ पिण्ड ब्रह्माण्ड दोऊ ते भीना।
सतगुरु प्रसाद कोऊ बिरले चीन्हा।
मन वच क्रम जिन आपा दीना।
ताहू नारायण अपना कर लीना।।

जहां एक ओर श्रीभगवान् की वाणी में जीवात्मा मोहमाया के आवरण के कारण स्रष्टा के साक्षात्कार से वंचित रहता है, मोह-माया का आवरण जीवात्मा को काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विकारों के वशीभूत कर देता है, जब तक मनुष्य इन विकारों पर विजय नहीं पाता, तब तक उसके लिए आत्म तत्व और आत्मतत्व के द्वारा परमतत्व की पहचान दुष्कर है, विकारों पर विजय-प्राप्ति का सरल-सा रास्ता है साधु की संगति :—

जिऊ साबुन मल बस्तर की तीउ अध दुष डारे धोई।
भगवान् साध संग साध होइ अंत बस्तु होई सोई।।

वहां दूसरी ओर श्री नारायण की 'वाणी' में बाह्याडम्बर तथा कोरे कर्मकाण्ड की खूब भर्त्सना की गई है। अनेक स्थलों पर कवि एक अक्खड़ उपदेशक का रूप धारण कर लेता है और ऐसा लगने लगता है कि कवि ने कबीर के प्रतिपाद्य को ही अपनी वाणी का विषय बना लिया है। हिन्दुओं के प्रस्तर-पूजर और मुसलमानों के अज़ान देने का मज़ाक उड़ाते हुए कबीर ने जिस व्यंग्यात्मक ढंग से दोनों के बाह्याचार की निंदा की थी, वैसा ही स्वर श्री नारायण के यहां सुनाई पड़ता है जब वे मुसलमानों के पाखण्ड का भंडाफोड़ करते हुए कहते हैं :—

मुल्ला सुबही जाग के सोर करो बहु काहि।
नारायण साहिब तो बहरा नहीं किसे पुकारि सुनाहिं।।

तथा फिर जब वे हिन्दुओं के धार्मिक आडम्बरों का उपहास करते हुए कहते हैं :—

माला फेरे क्या भया जो मनुआ अस्थिर नाहि।
नारायण ताकी माला पाषन क्या करे जाके प्रान रले पदमाहि।

पंजाब में रचित भक्ति साहित्य के विषय में एक द्रष्टव्य बात यह भी है कि जिस समय हिंदी भक्ति साहित्य का स्वर, भक्ति से रीति में परिवर्तित हो गया और फिर आधुनिकता की ओर अग्रसर होने लगा, उस सारे समय में, पंजाब में रचे जा रहे भक्ति साहित्य की परम्परा विशृंखलित नहीं हुई। रीतिकाल के उत्कर्ष के दिनों में भी पंजाब के जो कवि निष्ठापूर्वक भक्ति साहित्य की रचना में तल्लीन थे, उनमें से मैं यहां संत गरीबदास की चर्चा करता हूं।

संत गरीबदास

गरीबदास का जन्म सन् 1717 में, झज्जर के छुड़ानी नामक गांव में हुआ। इनके पिता का नाम बलराम सिंह और माता का नाम राणी था। क्षत्रिय जाटों का यह सपूत कालान्तर में ऐसा महान् संत सिद्ध हुआ कि आज तक इसके नाम से 'गरीबदासी पंथ' चल रहा है। इस पथ के अनुयायियों का विश्वास है कि स्वयं कबीर ने गरीबदास के रूप में दोबारा जन्म लिया था। गरीबदास ने अपनी 'वाणी' द्वारा ब्रह्म के निर्गुण रूप की स्थापना की है और अपनी काव्य-प्रतिभा द्वारा लोगों को सद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी है। गरीबदास की वाणी को लिपिबद्ध करके 'ग्रंथ साहिब' नाम दिया है तथा यह ग्रंथ गरीबदासी सम्प्रदाय का धर्म-ग्रंथ है। यह ग्रंथ चार भागों में विभक्त है—अंग भाग, ग्रंथ भाग पद भाग तथा रागभाग।

गरीबदास की रचनाओं में एक बहुत ही सुन्दर प्रतीक बार-बार प्रस्तुत होता है। वह है—'अलखपच्छ' वे अपने गुरु को भी अलखपच्छ के रूप में देखते हैं तथा साधना की पराकाष्ठा को प्राप्त होकर स्वयं भी अलखपच्छ बनने की कामना करते हैं। अलखपच्छ एक ऐसी काल्पनिक चिड़िया है जिसके विषय में कहा

जाता है कि यह बहुत ऊंचे आकाश में अंडा देती है। आकाश से धरती की ओर गिरता हुआ अंडा रास्ते में पक्षी को जन्म दे देता है और वह नवजात पक्षी, धरती का स्पर्श पाने से पूर्व ही आकाश की ओर उड़कर अपने माता-पिता से जा मिलता है। यूनानी मिथक पक्षी फोनेक्स (कुकनुस) के साथ मेल खाती यह धारणा गरीबदास के यहां आध्यात्मिकता के परिवेश में उपस्थिति होती है तथा वे कहते हैं :—

ऐसा सतगुरु हम मिला अललपच्छ की जात।
काया माया न उहां नहिं पिण्ड नहिं लात।।

और फिर स्वयं अललपच्छ बनने की इच्छा से तप और त्याग, दया और क्षमा का मार्ग ग्रहण करते हुए गरीबदास कहते हैं :—

ऐसा जरना चाहिए ज्यों अललपच्छ के अंग।
अंडा छुटै अकास तैं बहुरि मिलै सतसंग।।

संत रेण

इसी परम्परा में मैं संत रेण की चर्चा करना चाहता हूं। रीतिकाल के उत्कर्ष में ही उदासी सम्प्रदाय में दीक्षित संत कवि रेण की अध्यात्मपरक 'वाणी' पांच नदियों के इस प्रदेश में गुंजरित हो रही थी। सन् 1741 में जन्मे संत रेण भूदन (जिला संगरुर) के उदासी मठ के प्रवर्त्तक थे। भूदन उनके गुरु थे, बाबा साहिबदास का स्थान था, जहां संत रेण को आत्मतत्व का ज्ञान प्राप्त हुआ था। उनकी वाणी में सांसारिक विषय-वासनाओं के त्याग द्वारा मानव-जीवन की उत्तमता पर बल दिया गया है। साधना के मार्ग में जीवात्मा की ग्राहकता के जटिल प्रश्न को नानक-मरदाना-वर्तालाप के माध्यम से जिस सरलता के सन्त रेण ने अभिव्यक्ति किया है उसका एक उदाहरण देखिए :—

सुनि मरदान्या इस जग माहा
बोलहु साचि सू बहुते नाही।
जिऊ बहु उर्ग रहै महि माही
पर मणि सभी के सिर मै नाही।।

कवि निश्चलदास

लगभग इसी काल में, हिसार के धनाणा गांव में जन्में संत कवि **निश्चल दास** (1791 ई.) ने दादू पंथी परम्परा द्वारा साधना करके आत्मा और परमात्मा संबंधी जिन गूढ़ रहस्यों का ज्ञान प्राप्त किया था, उसे हिंदी कविता के माध्यम से प्रगट किया। महात्मा अमरदास के शिष्य, संत निश्चलदास कवि ही नहीं, न्याय तथा सांख्य के प्रकाण्ड पण्डित और वेदान्त के सशक्त व्याख्याता भी थे। अपनी 'वाणी' में उन्होंने ब्रह्म के एकत्व की स्थापना की है, जीव और ब्रह्म की एकता का प्रतिस्थापन किया, साधारण पाठकों को ज्ञान का मार्ग दिखाया है और वेदांत संबंधी अपने अद्‌भुत ज्ञान को सरल-सहज ढंग से वर्णित किया है। कवि की सरल परन्तु सशक्त शैली का एक उदाहरण देखिए :—

यही चिन्ह अज्ञान को जो माने कर्त्तव्य।
सोई ज्ञानी सुधर नर नहिं जाकूं भवितव्य।।

यहां मैं कतिपय कवियों की चर्चा इसलिए नहीं उठा रहा हूं क्योंकि उन पर संत या भक्त कवि की संज्ञा पूर्णरूपेण संगत नहीं बैठती परन्तु मैं उनकी रचनाओं के उन अंशों को नकारना भी नहीं चाहता जिनमें भक्ति या अध्यात्म का स्पष्ट स्वर विद्यमान है। आवश्यकता है कि उनकी रीतिपरक रचनाओं में से उनकी भक्तिपरक रचनाओं को अलग निकालकर, संदर्भ विशेष में उनके महत्व को स्वीकारा जाए, लेकिन इसके लिए यहां गुंजायश नहीं निकल पा रही है। ऐसे कवियों से मेरा अभिप्राय **अमीरदास, मृगेन्द्र, ग्वाल, ईश्वरीदास** आदि की कोटि में आने वाले कवियों से है।

विजयानन्द सुरि

पंजाब की धरती पर फले-फूले अध्यात्म के सघन वृक्ष की एक शाखा जैन मूर्तिपूजक सम्प्रदाय में दीक्षित संत कवियों के रूप में फूटती है। इस धारा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाम है— आचार्य **विजयानन्द सुरि** जो सन् 1835 में, जीरा के लहरा नामक गांव में पैदा हुए थे। आचार्य ने भी अपनी साधना के बल पर, चतुर्विध संघ से आचार्यत्व प्राप्त करके, तपगच्छ के पट्टधर हुए तथा पंजाब में जिन-मूर्तिपूजा को उन्हीं के हाथों नूतन जीवन प्राप्त हुआ। उनकी रचनाओं का मूलाधार यद्यपि मूर्तिपूजक जैन धर्म का प्रचार था परन्तु उनकी कृतियों का साहित्यिक मूल्य भी कम नहीं है। उनकी काव्य प्रतिभा का एक उदाहरण दृष्टव्य है :

जिन मुख बैन ऐन तत्व ज्ञान कामधेन
कवि मति सुध देन मेघ ज्यों बरसती।
गणनाथ चित्र भाई आतम उमंग धाई
संत की सहाई भाई सेवाएं सरसती।।

श्रद्धाराम फिल्लौरी

आचार्य श्री की परम्परा में कविता करने वाले कतिपय साधु संतों की फुटकल रचनाएं मुझे उपलब्ध हुई हैं परन्तु उनके रचायिताओं के बारे में यथेष्ट जानकारी के अभाव में मैं अभी अन्य किसी कवि की इतनी रचनाएं भी प्राप्त नहीं कर पाया हूं कि उसके विषय में कोई मत निश्चित कर सकूं।

आचार्य विजयानन्द के समकालीन, 'जय जगदीश हरे' नामक देश-प्रसिद्ध आरती के रचयिता कवि **श्रद्धाराम फिल्लौरी** इस परम्परा के अन्तिम चरण के देदीप्यमान नक्षत्र हैं। सन् 1837 में, फिल्लौर में जन्मे कवि श्रद्धाराम ने अपनी कविता द्वारा ईश्वर की सर्वत्र विद्यमानता की स्थापना करके, उसकी प्राप्ति के लिए व्यावहारिक जीवन की उत्तमता पर बल दिया है। वे अपने पाठकों को मतमतान्तरों के दुराग्रह से मुक्त करके उनकी आत्मा के उत्थान का प्रयास करते हैं। उनके ब्रह्म संबंधी दृष्टिकोण की व्याख्या उन्हीं की कविता के माध्यम से देखिए :—

कोऊ कहै शारदा सुरेश कोऊ सूर शशि
कोऊ कहै अम्बिका महेश परधान है।
कोऊ कहै भैरव भज कोऊ भूत प्रेत

कोऊ के सहायक गणेश हनुमान है।
कोऊ पूजै देहरा मसीत कोऊ गढ़ी मठ।
देवल दिवाल कोऊ पूजत मसान है।
मेरो प्रभु पूरन प्रतापवान कहां नहिं
'श्रद्धा' विचार सब में विराजमान है।।

संत सम्पूर्ण सिंह

वर्तमान काल तक पहुंचती इस अबाध धारा को आगे बढ़ाने में सहायक एक नाम है **संत सम्पूर्ण सिंह**। संत सम्पूर्ण सिंह का जन्म तरनतारन के स्थान पर सन् 1877 में हुआ था। अपने समय में उनकी साधना, विद्वता तथा सृजनात्मक प्रतिभा को इस हद तक स्वीकार किया गया कि इंडियन अकेडमी आफ़ साईंस टिनीवैल ने उन्हें पी. एच. डी., एस. सी. की उपाधि से सम्मानित करके उन्हें वेदांत और मेटाफिजिक्स के विदेशी प्रोफेसर का पद प्रदान किया। अपनी कविता में वे जीव तथा ब्रह्म के अद्वैत पर दृढ़ विश्वास की स्थापना करते हैं और परमात्मा के एकत्व के प्रबल समर्थक हैं। भक्ति साधना की स्वानुभूत घटनाओं को जिन दार्शनिक व्याख्याओं के साथ संत सम्पूर्ण सिंह ने प्रस्तुत किया है, वे पाठक को मुग्ध कर देती हैं। कृष्ण के दर्शन करने के बाद उन्होंने अनुभव को व्यक्त करने में कृष्ण के श्याम रंग को प्रकृति का प्रतीक तथा उनके पीताम्बर को त्रिगुणात्मक समभाव कहा है। कृष्ण का स्पर्श पाते ही इस प्रकृति ने आकार धारण कर लिया तथा यही कृष्ण प्रत्येक स्थान पर चराचर में क्रीड़ारत साक्षात दिखाई दे रहे हैं। जीवन के मुक्त-विहार में विश्वास रखने वाले इस कवि की कविता में मानवीय संबंध मिथ्या होकर प्रगट हुए हैं तथा सारतत्व के रूप में समस्त आत्माएं एक ही ब्रह्म के प्रसार के रूप में स्थापित हुई है। देखिए :—

ना तूं पुत्री-पिता नहीं मैं मैं तू अब दो नाहीं।
भ्रम ही द्वैत रूप था प्यारी वा बिनु ब्रह्म इकाहीं।।

उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी तक आते-आते पंजाब में रचे जा रहे हिंदी भक्ति-काव्य की भाषा खड़ी बोली होने लगती है और उसमें दार्शनिकता का पुट कम होने लगता है। इस काल की रचनाओं में हिंदी भक्ति साहित्य की गूंज पुनरावृत्ति के रूप में सुनाई पड़ती है तथा कवियों की अनेक मौलिक कल्पनाओं के रहते हुए भी, उनकी रचनाएं भक्ति-साहित्य की प्रतिध्वनि प्रतीत होती हैं। ऐसा होना तर्कसम्मत भी है और स्वाभाविक भी। युग परिवर्तन के साथ हमारे सामाजिक जीवन में भक्ति का वेग काफी कम हो गया था। संस्कार रूप में व्याप्त भक्तिभाव कर्म-कांड के रूप में विद्यमान था। अतः इस दौर के कवियों से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वे युगीन परिस्थितियों की अपेक्षा करके, अतीत के ढर्रे पर काव्य-रचना करते। इन कवियों का योगदान इस परम्परा को, युगीन अपेक्षाओं के अनुकूल आगे बढ़ाकर वर्तमान काल तक लाने का है, जो निश्चित रूप से श्लाघ्य है। यहां मैं विशेष रूप से दो कवियों की चर्चा करना चाहूंगा—चन्दूलाल तथा उनके शिष्य जीवनराम।

चन्दूलाल और जीवनराम

चन्दूलाल (जन्म 1862 : मालेरकोटला) ने अपनी कविता में जहां एक ओरआचार्य विजयानन्द सूरि के प्रतिपाद्य को विस्तृत व्याख्या प्रदान की, वहां दूसरी ओर अवतारवाद परिकल्पना को पुनः स्थापित किया। चन्दूलाल तथा उनके शिष्य **जीवनराम** (जैतो) दोनों का महत्व भक्तिकाल की परम्परा को आगे बढ़ाने तक ही सीमित नहीं अपितु इन दोनों कवियों ने युगीन आवश्यकताओं को अनुभव करके, सर्वसाधारण के अवचेतन में निहित धार्मिक संस्कार को परिपक्वता प्रदान की है तथा उसके अंकुरित होने की संभावनाओं को पोषित किया है। चन्दूलाल का काव्य अभी तक लगभग विस्मृति की चादर में छिपा था परन्तु अब उनके उपलब्ध ग्रंथों में से पांच ग्रंथ प्रकाशित हो चुके है तथा उनकी कविता पाठकों को सुलभ है। हां, जीवनराम द्वारा रचित काव्य अभी भी अप्रकाशित है। मेरी कामना है कि उनकी रचनाएं भी शीघ्र प्रकाशित कर सकूं तो विस्मृति के गर्भ से निकलकर, हिंदी साहित्य की यह धरोहर भी पाठकों के लिए सुलभ हो सके।

इस विहंग सर्वेक्षण द्वारा मैंने अपनी इस मान्यता के साधार होने का प्रमाण प्रस्तुत करके यह दिखाना चाहा है कि यद्यपि समूचे हिंदी भक्ति साहित्य में गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित तथा विशेष रूप से गुरुओं द्वारा रचित भक्तिकाव्य अपना स्थान बना चुका है परन्तु इस संकलन में बहु-आयामी भक्ति साहित्य की एक धारा के दर्शन ही होते हैं। एक अन्य धारा भी गुरु ग्रंथ साहिब के समानान्तर बह रही थी, जो रीतिकाल से होती हुई आधुनिक काल तक, बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक चलती रही है। मुझे चन्दूलाल परम्परा के कुछ कवियों के नाम तथा उनकी फुटकल रचनाएं भी प्राप्त हुई हैं। हो सकता है भविष्य में मैं इस पूरी परम्परा को खोजने तथा इसके अन्तर्गत रचित साहित्य को हस्तगत करने में सफल हो जाएं तो शायद यह धारा निकट अतीत के कुछ वर्षों तक बढ़ आए।

इस बहु-आयामी साहित्य के अनेक पक्षों को मैंने एक अध्याय का नाम देकर सूत्र में ले लिया है। इसके प्रत्येक सूत्र से भरपूर खोज तथा उपलब्ध साहित्य के गहन अध्ययन और सार्थक समालोचन की गुंजाइश अभी बाकी है। इसे कभी समायोजित सुव्यवस्थित रूप में लिया जाए तो मैं समझता हूं गोरखनाथ, जलंधर नाथ, चर्पटनाथ, चौरंगीनाथ आदि कवियों की सिद्धनाथ परम्परा, शेख फरीद, हज़रत अबू अली कलंदर, हज़रत अबुल मुआली, हजरत हाफिज मुसा आदि कवियों की सूफी परम्परा; सोढी मिहरबान, हृदयराम, साधु गुलाब सिंह, सन्त सिंह आदि कवियों की रामकाव्य-परम्परा; कृष्ण लाल, चन्द्रशेखर चतुरदास साहिब दास प्रभृति कवियों की कृष्ण काव्य परम्परा आदि परम्पराओं के अलग-अलग विस्तृत विवेचन से न केवल पंचनद प्रदेश का गौरव बढ़ेगा अपितु इससे हिंदी साहित्य भी श्री एवं समृद्धि प्राप्त करेगा।

पंजाब युनिवर्सिटी, ईवनिंग कालेज, चण्डीगढ़-160014

. . .तुम्हीं सो गए दास्तां कहते-कहते

एक सप्ताह के भीतर हिन्दी दो विभूतियों से वंचित हो गई— गत 14 फरवरी की रात को बम्बई में श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का निधन हुआ और 20 फरवरी को 'जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख, और इसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख' जैसी पंक्तियां लिखने वाले कविवर श्री भवानी प्रसाद मिश्र का। दोनों ही वृद्ध थे और दोनों की लेखनी मृत्युपर्यन्त अविराम गति सें चलती रही। इन दोनों दुःखद समाचारों से हिन्दी संसार मर्माहत हो उठा है।

अविभाजित पंजाब के सपूत, चंद्रगुप्तजी प्रेमचंद युग के अग्रणी कथाकार और पत्रकार थे। अपने देहावसान के समय उनकी उम्र 76 वर्ष थी। अपने लम्बे साहित्यिक जीवन में उन्होंने हिन्दी को अपनी सैकड़ों कहानियों, लेखों आदि से समृद्ध किया। उन्होंने एक लम्बी अवधि तक 'आजकल' का सम्पादन किया था। कुछ समय तक उन्होंने 'सारिका' का भी सम्पादन किया था। अपने निधन के समय वह एक वृहद उपन्यास लिखने में लगे थे।

भवानीजी को हिन्दी जगत ने 'भवानी भाई' की संज्ञा दी थी। उन्होंने कविताएं सिर्फ लिखी ही नहीं, कविता को जिया था। बोलचाल की भाषा में कविताएं रचना उनकी विशेषता थी। वह स्वतंत्रता सेनानी भी थे। सन् 1942 के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में उन्होंने तीन साल की जेल की सजा भुगती थी। 'गांधी पंचशती', 'बुनी हुई रस्सी', 'खुशबू के शिलालेख', 'अंधेरी कविताएं', चकित है दुख' आदि काव्य-संग्रहों के रूप में उन्होंने हिंदी कविता को अपनी अनुपम देन दी है। वह अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'दूसरा सप्तक' के कवि थे जिसमें सम्मिलित उनकी दो कविताएं—'गीतफ़रोश' और 'सतपुड़ा के घने जंगल' बहुचर्चित रहीं। उनकी कविताओं में ओज के साथ करुणा की धारा प्रवाहित होती थी।

भवानीजी ने अद्भुत प्राणशक्ति पाई थी। उन्हें कई बार दिल के दौरे पड़ चुके थे और विगत कई वर्षों से वह 'पेस मेकर' पर चल रहे थे। इसके बावजूद न उन्होंने अपनी काव्य-रचना में विराम आने दिया, न यात्राएं बंद कीं, न कवि सम्मेलनों आदि में भाग लेना बंद किया।

भवानीजी ने अपने लम्बे जीवन-काल में 'कल्पना', भूदान यज्ञ' और 'गांधी मार्ग' आदि पत्रिकाओं का सम्पादन किया था। सन् 1958 से 1972 तक वह 'सम्पूर्ण गांधी वाङमय' के भी सम्पादक रहे थे।

चंद्रगुप्तजी और भवानीजी— हिन्दी की ये दोनों ही विभूतियां अपने जीवन में किसी न किसी समय केन्द्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय से जुड़ी रहीं। सम्पूर्ण हिन्दी जगत के साथ उन्हें 'आजकल' परिवार के श्रद्धा-सुमन और दोनों संतप्त परिवारों के प्रति हार्दिक संवेदनाएं। उनके पार्थिव शरीर का अन्त हो गया, लेकिन यशःकाया अमर है।

—सम्पादक

आगामी अंक में

- ☐ स्व. चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के बारे में श्री राजेश्वर प्रसाद सिंह के मार्मिक संस्मरण।
- ☐ बौद्ध संस्कृति, चार्वाक दर्शन और अमृता शेरगिल पर विशेष लेख।
- ☐ पूरब और पश्चिम के बीच झूलता रोमानिया— डा. सूरज भान सिंह।
- ☐ निर्मला दाने की मराठी कहानी 'चक्कर' के साथ-साथ रविदत्त मोहता, सुशील राजेश आदि की कहानियां।
- ☐ इसके अलावा कविवर भवानी प्रसाद मिश्र पर डॉ. जगदीश वाजपेयी की कविता, पुस्तक समीक्षा और वातायन आदि अन्य नियमित स्तम्भ।

मेरा खो गया है मित्र....

□ ताराचन्द्र मकसानें

अखिल भारतीय कवि सम्मेलनों की जान, बुलन्द आवाज़ और जोशिले व्यक्तित्व के धनी, राजकवि इन्द्रजीत सिंह तुलसी के बिना शायद ही कोई कवि सम्मेलन अपने आप में संपूर्ण कहलाता होगा।

बंबई के ऐतिहासिक आज़ाद मैदान में मैंने कई अखिल भारतीय कवि सम्मेलनों में तुलसी जी को सुना लेकिन मई, 1984 माह में भारतीय व सोवियत अंतरिक्ष यात्रियों के सम्मान में यहां आयोजित समारोह में उनका अंतिम बार काव्य पठन होगा ऐसा शायद ही किसी ने सोचा होगा.....अपनी बुलंद आवाज़ में अंतरिक्ष यात्रियों का अभिनंदन पर तुलसी पुनः अपनी जगह पर बैठ गये और पास बैठे राज कपूर ने उनकी पीठ थपथपाते हुए कहा—"वाह, तुलसी तुमने तो कमाल कर दिया"···शानदार करतल ध्वनि के बीच उन्हें दिल का दौरा पड़ा और अस्पताल पहुंचाने के पहले ही उनके प्राण पखेरू उड़ गए।



राजकवि इन्द्रजीत सिंह तुलसी

2 अप्रैल 1926 को कानाकाच्छा (लाहौर) में जन्मे तुलसीजी की शिक्षा खालसा कालेज (अमृतसर) में हुई। तुलसी के पिता भी कवि थे। 9 वर्ष की अल्पआयु से ही वे कविता लिखने लगे थे। उन्होंने हजारों की तादाद में राष्ट्र भावना को जागृत करने वाली कविताएं लिखी। राजकवि तुलसीजी एक सच्चे देश भक्त थे। उन्होंने कई किताबें भी लिखी हैं और 'कश्मीर जलता रहा', 'बर्फ बनी अंगारे', 'जीवनरत', 'बादशाह दरवेज़ गुरु गोविन्दसिंह' आदि जिनमें प्रमुख हैं। तुलसीजी के राजघराने से घनिष्ठ संबंध थे। पंडित जवाहरलाल नेहरू आप से बहुत प्रभावित थे। नेहरूजी ने उनकी एक पुस्तक 'बर्फ बनी अंगारे' की भूमिका लिखी थी। सन् 1960 में तुलसी जी को 'राजकवि' की उपाधि से सम्मानित किया गया तथा सन 1966 में उन्हें 'पद्मश्री' का खिताब मिला।

तुलसी जी ने फिल्म 'शोर' के गीत 'पानी रे पानी, तेरा रंग कैसा', से फिल्मों में प्रवेश किया। हालांकि वे फिल्मों में गीत शौकिया तौर पर लिखते थे। उनके लिखे कुछ फिल्मी गीत जो बहुत ही लोक-प्रिय हुए···"बेशक मंदिर मस्जिद तोड़ो" (बॉबी), "एक डाल पर तोता बोले एक डाल पर मैना", (चोर मचाये शोर) "जीवन चलने का नाम चलते रहो सुबह और शाम," (शोर), अंतिम दिनों में तुलसी पंजाब समस्या से दुःखी थे। वे बुद्धि-जीवियों के एक दल के साथ पंजाब जाकर शांति स्थापना का प्रचार भी करना चाहते थे। उनका कहना था··· "सिख और हिंदू एक थे, एक हैं और एक रहेंगे···।" सिख और हिंदू तो एक जिस्म, दो आंखों की तरह हैं।"

तुलसी जी की कविताएं····· "मेरा खो गया है मित्र, जिसका नाम है चरित्र", "मैं हूं माटी का दिया, काली रात का पिया" आदि कवि सम्मेलनों को कामयाब बनातीं थी। उनकी एक ग़ज़ल जो स्वयं तुलसी जी को बहुत पसन्द थी·····

ऐ मेरे हम नवां दर्द में मुस्करा
दर्द भी है नशा जिंदगी के लिए···
थोड़े आंसू भी मुस्कान में घोल ले,
गम जरूरी है दिल की खुशी के लिए···
मेरे मालिक मेरी बख्श देना खतां
फूल पूजा के तुझ पर चढ़ा न सका·····
हाथ बंधों की खिदमत में मसरूफ थे,
हाथ खाली न थे बंदगी के लिए।

8/16 जयराम कांजी चाल
तात्या धारपुरे पथ गिरगांव, बम्बई-4

अनुभूति

—प्रभजोत कौर

जाना

सनातन है जाना
पर दिल के चाहने पर
मेरा कोई वश नहीं
एक पश्चाताप है मन में
आंखों ने अभी बसन्त नहीं देखा
मेरे स्वप्न अभी अधूरे हैं
मौसम ने अपने रंग अभी अनावृत नहीं किए
मैंने कोई काम पूरे नहीं किए
और जी भर आनन्द भी नहीं लिया प्यार की हिलौरों का
जो भी छुआ
वही बिखर गया टूट कर
सांस लेने का समय भी बीत गया
अभी देख रही हूं मैं रात में तारे
कुदरत की लीला की अद्‌भुत झिलमिलाहटें
रोज गिनती हूं मगर अन्त कहां !
पर्वतों के पीछे रात ढल रही है
टहनी पर से तोड़ तो लिए हैं
मगर फल अभी चखे नहीं
फूलों की सुगन्ध का मजा भी नहीं लिया
और बारिश आकाश में ही भटक रही है
अभी तो प्यासे हैं मेरे होंठ
अभी उदास हैं मेरे प्राण
हाथों में भरा कटोरा पड़ा है
अधरों को छू पाना संभव नहीं
फूलों का रस क्या पीना ?
क्या होगा मगन हो जाने से ?
मदमस्त होकर क्या जीना ?
बटोर कर झोली में भर लिए
मगर दो क्षण और न मिल सके
अभी तो प्याला चाक पर चढ़ा
हुआ है
और गढ़ी नहीं साकी की मूरत
सोई हुई है अभी सोच
और डूबी हुई है नींद में काया
प्रिय ! यह विछोह की बेला है
तारे आंसू बहा रहे हैं
अभी न तुम्हें चूम पाई हूं
और न जकड़ ही पाई हूं आलिंगन में
मौसम का आनन्द भी नहीं लूटा
और अभी कोई काम भी नहीं निपटाए
जाना है
हाय जाना है
जाना
सनातन है जाना
पर दिल के चाहने पर
मेरा कोई वश नहीं । □ □



डी-203 डिफेंस कालोनी, नयी दिल्ली-24
अनुवाद : विनोद शर्मा,
148-बी, एल. आई. जी फ्लैट, राजौरी गार्डन,
नयी दिल्ली-110027

लकीर

—स. स. मीशा

जिन्हें समझा था साथी दिल के हैं
वे अब, जब भी कभी मिलते हैं
तलवार से, संगीन से—या—
कलम की महीन नोक से
खींचते हैं लकीर बारीक सी
मेरे दिल से निकलती चीख सी—
'बोल तू किधर है
लकीर के इधर या उधर है'
सुनकर मैं, कुछ नहीं कह पाता
सोच में उलझा चुप रह जाता
खुदगरज़ कहें, गद्दार कहें
और न जाने
क्या-क्या मेरे यार कहें !
मैं सब कुछ मुस्कुरा कर सह जाता हूं
और कुछ कहे बिना रह जाता हूं
यह लकीर तो सांसों के रंग की है
मेरे फेफड़ों के बीच से निकलती है !



अनुवादक : कीर्ति केसर
—1086/ई गोविन्दगढ़,
जालन्धर शहर-144001

रिश्ता क़ौम का देश के साथ

— ज्योतिदेव

हर क़ौम का
देश के साथ एक रिश्ता है
ये रिश्ता भेदभाव का नहीं
समझौते का रिश्ता है।
हर क़ौम का
देश के लिये एक फ़र्ज़ है
ये फ़र्ज़ मरने-मारने का नहीं
प्यार बढ़ाने का फ़र्ज़ है।
हर क़ौम का
देश के लिये एक जज़बा है
ये जज़बा देश को—
मिट्टी में मिलाने का नहीं
देश के लिये
स्वयं मिट जाने का जज़बा है।
हर क़ौम के पास
देश के लिये एक तोहफ़ा है
ये तोहफ़ा प्रदेशों को विभाजित करने
का नहीं,
एकता बढ़ाने का तोहफ़ा है।
हर क़ौम का
देश के साथ एक रिश्ता है
ये रिश्ता भेदभाव का नहीं
समझौते का रिश्ता है। □

हसद की प्यास



मेरे नानक बाबा
कभी देखो आप आके
ये मजहबी दरिन्दे
आपके नाम का पल्लू पकड़ के
किस तरह 'हसद की प्यास' मिटाते हैं।
आपकी हिदायतों को दिल से भुलाकर
मनुष्य को मनुष्य से लड़ाते हैं ।
दावा तो करते हैं वे
आपकी ठेकेदारी का,
पर जिरह की लपटों में जला-जला के
आपके 'एकम आकार' को भस्म करते हैं।
आपकी प्रतिष्ठा के ये तथाकथित
चन्द रखवाले
आपके आदर्शों से आपको दूर ले जाकर
आपका शुभ-नाम मिट्टी में मिला रहे हैं।
आपने तो
अहम् को तजने का पाठ पढ़ाया,
लेकिन ये 'अहम्' ही में गोते लगाते हैं।
आपने तो स्वयं को
'नानक-नीच' कहा,
लेकिन ये स्वयं को 'उत्तम' कहते हैं
नानक बाबा
आप स्वयं प्रकट होकर बताओ
"ये किस क़ौम के बन्दे हैं ?"

—2, स्मिथ स्क्वायर, सिविल लाइन्स, कानपुर

वापसी

—डा. रविन्द्र

तुम्हारे पास रहकर मुझे सब कुछ भूला रहा
घर की कच्ची दीवारों का रुदन
गुदाज़ खरगोशों की अठखेलियां
यारों की महफिलें, बहसें, कहानियां
बूढ़ी बेरी की आंखों में उतरता मोतिया
और पिछले साल तीस पार कर गई बहिन की चिन्ता

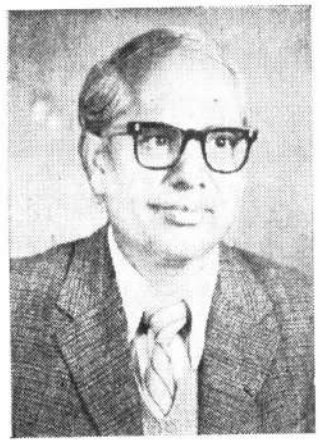
याद रहा तो बस—
एक बेतरतीब, बाज़ौक ज़िंदगी का फ़लसफ़ा
एक धुंध जैसे एहसास के नाम की तलाश
एक अंधी गली की ओर बार-बार आकर्षित करती आवाज़
एक बर्फ़ीली शिला के नाम
धू-धू सुलगते वर्षों की वसीयत।

अब कि जब
सब कुछ फिसल चुका है मुट्ठी के रेत-सा
मैं वापस लौटा हूं—उस सब के पास
जो मुझे तुम्हारे पास रहकर भूला रहा—
कच्ची दीवारों की जगह लोरियों की मरघट है
दोस्तों के पास महज कड़वे कसैले बोल हैं
बेल-सी छोटी बहिन
किसी दूरस्थ गांव में सुलग रही है
और गुदाज़ खरगोश मुझे शून्य नज़रों से घूर रहे हैं

तुमसे विदा होकर मुझे वह सब मिल गया है
जो एक और दिशाहीन यात्रा के लिए पर्याप्त है। □

4, सिनेमा रोड, बटाला, गुरुदासपुर
अनुवाद : फूलचंद मानव

धर्म



केदारनाथ कोमल

बर्फ में छिपा अंगार है धर्म
अंबर-सा फैला विस्तार है धर्म
फूलों में नये रंग छलकाता है धर्म
हर प्राणी को गले लगाता है धर्म
इच्छाओं के नये चोर भगाता है धर्म
हर अंधेरे में नयी भोर जगाता है धर्म
लहू में गुनगुनाता गीत है धर्म
रूह में जगमगाती प्रीत है धर्म
दिल में गाती उमंग है धर्म
सागर में लहराती तरंग है धर्म
लहू की बूंद में सूरज उगाता है धर्म
आंखों वाले अंधे को राह दिखाता है धर्म
एक दिल को सब का दिल बनाता है धर्म
एक आंसू को सागर बनाता है धर्म □

ई-97, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली-110023

पंजाब

मैं पांच नदियों की आन
मैं पांच प्यारों की शान
मैं ऋग्वेद की ज़मीन
मैं सब धर्मों का यकीन
मैं इतिहास का पहाड़
मैं शेर की दहाड़
मैं सिकंदर की पुकार
मैं पोरस की ललकार
मैं तेगबहादुर का बलिदान
मैं गुरु गोविंद का अरमान
मैं गुरु नानक का नूर
मैं सूफ़ी का सरूर
मैं दरबार साहिब का दरबार
रब्ब अल्लाह वाहेगुरु का प्यार
मैं रणजीत की आंख की रौशनी
नलवे में दिलेरी की क्या कमी
मैं भगत सिंह की जान
सुखदेव राजगुरु का ईमान
मैं लाला लाजपत की लाज
मैं कोहेनूर का ताज
मैं भाई वीर का चित्र
मैं हर प्राणी का मित्र
मैं हर धर्म का मतवाला
मंदिर मस्जिद या हो शिवाला। □

ग़ज़ल

—फूलचंद मानव

क्या हुआ मौसम कि घर परिवार गांवों से गये
दुर्घटित माहौल में दिलदार पावों से गये।
व्यावसायिक व्यस्तताएं बढ़ गयीं कुछ इस क़दर
हम सलामों से चुके हैं औ' दुआओं से गये।
हो कहां फ़रियाद या फिर हमसफ़र मानें किसे
जो भी थे सम्बन्ध चमकीली हिनाओं से गये।
यार नखरे में न आओ यह हवा विपरीत है
लग रहा कंधे जो अपने थे भुजाओं से गये।
ठंड कितनी शीत है यख-सा हुआ वातावरण
अग्निधर्मा बीज रिश्तों के हवाओं से गये।
है ग़नीमत आंख में बस इक नमीं का आसरा
ख्वाब जितने थे धरा से अप्सराओं से गये।
अब तो घर की छत से भी 'मानव' नज़र आए न चांद
फूल, पत्ते, जेल कि जैसे बददुआओं-से गये ।।

बी-22, सिविल स्टेशन, बठिंडा-151001

ग़ज़ल

—विश्वनाथ गुप्त

अमन हो जहां वो शहर ही कहां है
जो नफ़रत को मारे, ज़हर ही कहां है।
ग़ज़ल मेरी टूटी है, मेरी तरह ही,
रवानी हो जिसमें बहर ही कहां है।
भंवर में मैं फंसकर जो डूबूं तो डूबूं,
बचा ले जो मुझको लहर ही कहां है।
शामो सहर रहते डूबे हैं गम में,
खुशी जिसमें मिलती, पहर ही कहां है।

41, बलवंत कालोनी, मलेर कोटला (पंजाब)-148023

सत्यपाल चुघ की दो कविताएं

एकता

बेशक नहीं मानो
कि एक ही नूर से
सब जग है उपजा
कि एक ही दूर है
सब जग को जाना
कि एक ही आत्मा है
सब जग की टेक
पर काला या गोरा
जैसा-कैसा भी हो कोई
क्या सबके खून की रंगत
और धड़कन एक नहीं ?
क्या खिलता या छलछलाता
हर चेहरा एक नहीं ?
क्या खान-पान रंग-रास की
सहनेच्छा एक नहीं ?
क्या इक प्यारे परिवार की
अभिलाषा एक नहीं ?
क्या स्वतन्त्र मानवता की
आशा-भाषा एक नहीं ? □

घड़ी

पिचक गया है चेहरा
घिस-पिस गए हैं पुरजई अंग
तेल-चाबी देने पर भी
हांफती घिसटती है
बन गई है अपाहिज सी
इतनी सुस्त
कि होती रहती बेवक्त
यह नाम की घड़ी है फक्त
(या कह लो रिसता घड़ा)
इसे फोड़ दें/या फूट जाए
तो क्या बुरा ?
"पर झटके से क्यों करें
टिकटिक का
सहज अवरोही
संगीत बेसुरा" □

10, स्टाफ क्वार्टर्स,
किरोड़ीमल कालेज, दिल्ली-7

बुद्धिजीवी

—कृष्ण कुमार खुल्लर

यह दस्तरख्वान
हर समय सजा मेज़
सुबह से रात तक
पेट भर भोजन के लिये
नाश्ता, दोपहर का खाना,
शाम की चाय और रात्रि भोज

एक छत के नीचे
एक घर के अन्दर
सभी साज व सामान
आराम के लिये
वैभवपूर्ण जीवन

एक रात
खाने की मेज पर
युवा पुत्र साथ था
बोला—
हमारे देश में गरीबी बहुत है
जहां जाता हूं
देखता हूं
भूखे, नंगे और बेघर लोगों की भीड़
किस प्रकार निगल सकूंगा
एक भी ग्रास

मैं टूट पड़ा था
स्वादिष्ट भोजन पर
क्रम जारी रहा
कहा :
यह प्रश्न हमें विरासत में मिला है
तुम्हारे पड़दादा ने जो उत्तर दिया था
वही दुहराता हूं—
कभी
में भी यूं ही सोचता था
सोचता रहा
भूखे, नंगे, बेघर लोगों के लिये
एक तड़प थी
उनकी बस्तियों में जाता
उनका दुख-दर्द सुनता
उन्हें खूब उकसाया
लेकिन उन्हें जड़ पाया
उनके साथ घुलमिल कर
में स्वयं भी जड़ हो गया
देखा—
होनहार बेटा
ग्रास पर ग्रास निगल रहा है
वह भी हो गया
जड़
वैसे हम कहलाते हैं
बुद्धिजीवी ! □

2762, राजगुरु मार्ग, पहाड़ गंज,
नई दिल्ली-110065



भीष्म साहनी

हिन्दी के जानेमाने कथाकार भीष्म साहनी से बातचीत

भारतीय संस्कृति को पंजाब की देन

□ वेद प्रकाश अरोड़ा

भारतीय संस्कृति में पंजाब के योगदान पर जब मेरी श्री भीष्म साहनी से बातचीत हुई तो वे बोले इसमें आप चाहते क्या हैं ? प्रश्न सीधा और सपाट यथोचित था। मैंने कहा संस्कृति अपने आप में एक व्यापक अर्थबोध का परिचायक है। इसमें धर्म, भाषा, रहन-सहन, खान-पान आदि सभी आ जाते हैं। इसमें समुदाय विशेष के चिंतन, दर्शन, उसके सुखदुःख जीव-जगत के प्रति दृष्टिकोण, और साथ ही इस सब के पीछे प्रेरणा-स्रोत, आदर्श-सिद्धांत-सम्मिलित होते हैं। इन्हीं स्थूल-सूक्ष्म तत्वों के संदर्भ में पंजाब का भारतीय संस्कृति में, उसकी सुसम्पन्नता में क्या और कितना सहयोग रहा है। इस पर आप के विचार चाहता हूं। आपका जन्म स्वतंत्रता-प्राप्ति से पूर्व संयुक्त पंजाब के नगर रावलपिंडी में हुआ तथा आपकी शिक्षा-दीक्षा भी रावलपिंडी और लाहौर में हुई। आप पंजाब की मिट्टी से, उसकी महक से, उसके गली-कूचों से गहरे जुड़े रहे हैं इसलिए आपके विचारों का अत्यंत वजनी और मूल्यवान होना स्वाभाविक है। वैसे इतिहास के पन्नों को उलटने-पलटने और उन पर सरसरी निगाह डालने पर यह बात बिल्कुल स्फटिक की तरह उजागर हो जाती है कि पंजाब देश की एक ढाल, विदेशियों का सम्पर्क-स्थल, ज्ञान-विज्ञान का केंद्र और ऋषिमुनियों का तपोवन तथा साधु-संतों और पीरों की क्रीड़ास्थली रहा है। पोरस जैसे यशस्वी राजाओं ने विदेशी आक्रमणों का मुंह ही नहीं मोड़ा, उन्होंने देश के अंदर जनमानस का प्रवाह अक्षुण् रूप से चलने दिया, और सब कुछ अपने ऊपर झेलते हुए शेष भारत के चिंतन एवं गतिविधियों में कोई खलल नहीं पड़ने दी।

पंजाबी, एक मजहब की या समुदाय विशेष की, या यूं कहें, मात्र मुसलमानों, सिखों या केवल हिन्दुओं की भाषा नहीं रही, सभी की सांझी बन गई। दसों गुरु हिन्दू-सिखों के साझे थे। सिंह अथवा सिख शब्द का प्रचलन दसवें गुरु गोविंद सिंह ने किया। उनसे पहले नौ गुरू सहजधारी थे उनके नाम हिंदुओं के थे। गुरुग्रंथ साहब भी सांझा था और है। उसमें उल्लिखित शब्दों और वाणियों के प्रणेता 27 संतों एवं गुरुओं में अधिकतर सहजधारी और पंजाब के बाहर के थे। यह प्रातः वंदनीय ग्रंथ हिंदू दर्शन, पौराणिक गाथाओं तथा रामकृष्ण के आदर्शों से प्रेरित हैं। इसमें हरि अथवा हर का उल्लेख दस हजार से अधिक बार हुआ है। स्वर्ण मंदिर भी हर मंदिर कहलाता है अमृतसर शहर की स्थापना और गुरुग्रंथ साहब का सृजन भी खालसा की उत्पत्ति से कहीं पहले हो चुका था। गुरुनानक का चेला मरदाना मुसलमान था।

सांझे गुरुओं और सांझे धर्म स्थलों के साथ-साथ यहां की लोक-कथाएं, यहां के भंगड़े, गिद्दे, दूल्हा भट्ठीवाला, हीर रांझा, सस्सी पुन्नू, सोहनी माहीवाल वगैरा सभी हिंदुओं, मुसलमानों और सिखों के सांझे थे। पंजाबियत सांझेपन का, एकता का, आत्मीयता का, आत्मविश्वास का, उदारता का, सहनशीलता, मेहनत और दबंगपन तथा साथ ही खुली बाहों से आदर सत्कार का दूसरा नाम है। पंजाब ने पंजाबी के साथ ही हिंदी और उर्दू को समृद्ध बनाने वाले लेखक, कवि और कहानीकार दिए। रफी जैसा गायक दिया और दिए अनेक फिल्मी जगत के जगमगाते सितारे, पटकथा लेखक, निर्माता निर्देशक। आजादी से पहले उसने भगत सिंह, ऊधम सिंह, लाला लाजपतराय, हरदयाल जैसे स्वाधीनता के दिवाने दिए, तो आजादी के बाद देश की सांझा खुशहाली के लिए गेहूं-चावल और कलकारखाने दिए। रही बात हिंदू सिखों की तो उनका रिश्ता नाखून और मांस की तरह अविछिन्न है। कई घरों में एक ही मां के दो बेटों में

एक सिख तो दूसरा हिंदू है। एक बहन का विवाह सिख परिवार में हुआ तो दूसरे का हिंदू परिवार में। कोई राम सिंह है तो कोई रामलाल है। अनेक हिन्दुओं विशेषकर सिंधी हिंदुओं के घरों में कोई भी अनुष्ठान गुरुग्रंथ साहब के प्रकाश के बिना पूरा नहीं माना जाता।

कुछ इन्हीं बातों को लेकर हिंदी के यशस्वी कथाकार और सांझी संस्कृति के सौम्य संजीव प्रतीक भीष्म साहनी के घर पर चंद लम्हें व्यतीत कर उनसे कुछ प्रश्न किए जिनका उत्तर यहां अविकल दिया जा रहा है।

भीष्म साहनी—प्राचीन काल की बात कहें, या मध्ययुग की या आज के जमाने की, देश की संस्कृति को, पंजाब की देन, सदा उत्कृष्ट रही है, देश का यह उत्तर पश्चिमी सीमावर्ती प्रदेश, बाहर के देशों के साथ हमें जोड़ता रहा है, तिजारत के रास्ते भी इधर से ही होकर जाते थे। बाहर से आने वाले हमलावर भी इसी को लांघ कर आते रहे। बौद्ध भिक्षु और कलाकार तथा देश-देशांतरों का पर्यटन करने वाले जिज्ञासु भी इसी रास्ते आते-जाते रहे। अभी दो ही दिन पहले अखबारों में पढ़ने को मिला कि लुधियाना के निकट संगरूर में किसी प्राचीन बौद्ध समाधि के अवशेष मिलें हैं। प्राचीन काल में तक्षशिला का विश्वविद्यालय तथा ज्ञान-विज्ञान का केंद्र इसी प्रदेश में था। गांधार मूर्ति कला का विकास इसी प्रदेश में हुआ था। यूनानी संस्कृति के साथ अलेक्सांद्र के आक्रमण और यूनानी राज्य की स्थापना के बाद दो सौ साल से अधिक समय तक, इसी प्रदेश का सबसे गहरा सम्पर्क रहा था। अपने इतिहास को कोई भूल जाये तो भूल जाये, लेकिन इसमें संदेह नहीं कि भारतीय संस्कृति के विकास का यह अनुपम केन्द्र रहा है। शैवालिक तथा कुरुक्षेत्र और जालन्धर अनेक ऐसे नाम हैं जो हमारे गौरवपूर्ण इतिहास की स्मृतियां आज भी जगाते हैं। पर यह तो रही पुराने जमाने की बात, मध्य युग में पूरे देश को आंदोलित करने वाले उस महान जनतन्त्रात्मक आंदोलन जिसे हम भक्ति आंदोलन का नाम देते हैं, उसके अनेक प्रकाश स्तम्भ पंजाब में ही हुए हैं। भक्ति आंदोलन जिन जीवन मूल्यों को लेकर चला था उनकी तह में मानवजाति के कल्याण की महती प्रेरणा थी। जात-पांत के विरुद्ध, और मानव एकता के लिए, भ्रातृ-भाव तथा हर इन्सान में भगवान की छवि को देखने की प्रेरणा इस आंदोलन ने दी थी। यह आंदोलन हमारे देश के सांस्कृतिक जागरण का उस समय का सबसे प्रबल आंदोलन था, संतों की वाणी धर्म-भावना से भी उतनी ही ओतप्रोत थी जितनी सामाजिक न्याय, मानवीय एकता ऊंच-नीच के बहिष्कार, स्त्रियों के प्रति गहरे आदरभाव आदि मान्यताओं से उत्प्रेरित थी। यह आंदोलन उस समय भारत की अन्तरात्मा की आवाज था। और उसके महान प्रणेताओं में नानक और रविदास तथा अनेक अन्य संत और गुरु शिरोमणि थे। पांच सौ साल से अधिक समय बीत जाने पर भी उनकी वाणी लाखोंलाख भारतवासियों के होठों पर है, और सभी उससे आज भी प्रेरणा ग्रहण करते हैं। देश के अन्य भागों में, कहीं मीरा तो कहीं कबीर और कहीं तुकाराम आदि ने वैसी ही मानवीय एकता की जोत जलाई थी। मध्ययुग में इसी रास्ते से देश में विभिन्न जातियों के आक्रमणकारी भी आये थे। राज्य बदले, सल्तनतें बदलीं, उनके साथ जीवन यापन के ढंग बदले, रीतिरिवाज बदले, कई नई भाषायें आयीं, नये-नये धार्मिक प्रभाव आये, कला-साहित्य नये-नये रूपों में ढले, राग-रंग बदले। यह प्रदेश सांस्कृतिक आदान-प्रदान तथा विकास का धड़कता केन्द्र बना रहा। यदि किसी जमाने में यह संस्कृत का केन्द्र था, और बाद में पाली-संस्कृत और प्राकृत का तो उसके बाद फारसी-अरबी का भी केंद्र बना रहा। इसी मध्ययुग में ही इन्हीं प्रभावों को घात-प्रतिघात से उस सांझे सभ्याचार का जन्म हुआ जिसे हम पंजाबी सभ्याचार का नाम देते हैं, या पंजाबियत का। इसमें सामाजिक जीवन का एक प्रकार का सांझापन और खुलापन पाया जाता है। पंजाब के निवासी अलग-अलग धर्मों को जरूर मानते थे लेकिन सामाजिक जीवन में एक दूसरे के बहुत नजदीक शताब्दियों तक एक साथ रहते हुए एक सांझा सामाजिक जीवन पनपता रहा था। उठना-बैठना, देन-लेन, शादी-गमी में शिरकत, और फिर जो भक्ति आंदोलन यहां पनपा थे उसमें सूफी मान्यताओं और प्रभावों का भी पुट था। इसी काल में पंजाबी भाषा भी पनपी थी। जिसमें संस्कृत, प्राकृत, फारसी आदि के शब्द भाषा में खप गये थे।

उस समय के हमारे कवियों में बुल्लेशाह, बाबा फरीद, वारिसशाह आदि ने हमारे साहित्य को चार चांद लगाये हैं। इसी एक तथ्य से पता चल जाता है कि पंजाबी किसी विशेष धर्म के अनुयाइयों की भाषा नहीं हैं, यह प्रदेश के सभी निवासियों की सांझी और अति प्रिय भाषा है। इसका सत्कार न करना पंजाबी सभ्याचार से मुंह मोड़ना है और अपने इतिहास को नकारना है। हीर वारिसशाह हर पंजाबी की जबान पर आज भी है, भले ही वह पाकिस्तान में रहने वाला पंजाबी हो या भारत में रहने वाला पंजाबी और अगर कोई यह कहे कि वारिसशाह तो मुसलमान था और गुरु गोविन्द सिंह सिख थे और रविदास हिन्दू थे, तो फौरन ही हम आज के साम्प्रदायिक पूर्वाग्रह इतिहास पर लागू कर रहे होंगे। कौन नहीं जानता कि पीरों, फकीरों की दरगाहों पर सभी जाते थे, गुरुद्वारों और मंदिरों में हिन्दू भी जाते थे और सिख भी और तीज-त्यौहार भी सांझे थे। वैसाखी का मेला सभी पंजाबियों का सांझा मेला है। धार्मिक अन्धविश्वास के चश्मे से अगर हम हर बात को देखना चाहें तब तो हिन्दुओं को केवल हिन्दू और सिखों को केवल सिख ही नज़र आयेंगे। पर इस सांझे सभ्याचार से देश की एकता को बड़े से बड़ा दुश्मन भी इन्कार नहीं कर सकता। सभी पंजाबियों ने एक सांझी विरासत पायी है, जिसमें पीढ़ी-दर-पीढ़ी पंजाबियों का लालन-पालन हुआ है, यह सांझा सभ्या-

चार हमारे खून में हैं। इसमें एक-दूसरे के प्रति प्रेम भाव, एक दूसरे की धार्मिक मान्यताओं के प्रति आदरभाव और सहनशीलता आपसी रिश्तों में खुलापन, उदारता, जीवन में गहरी आस्था, कर्मठता, एक प्रकार का दबंगपन, मेहमान नवाजी, जात-पात तथा ऊंच-नीच के प्रति विरोध भाव आदि-आदि अनेक विशिष्टताएं पायी जाती हैं, समय की मांग तो यह थी कि इस सांझेपन को और ज्यादा मजबूत बनाया जाता, जिस तरह समूचे देश के लिये पंजाबियत एक मिसाल बन रही थी, वैसे ही वह मजबूत नीवें रखी जातीं जिन पर सेक्यूलर भारत का भव्य प्रसाद खड़ा होता, लेकिन देश की एकता के दुश्मन धर्मांधता और साम्प्रदायिकता तथा साम्राज्यवादी संकीर्ण राजनीति और देश के विदेशी साम्राज्यवादी दुश्मन इस सांझेपन में विष घोलने में कामयाब होने लगे।

पंजाब की सांस्कृतिक देन हाल ही के इतिहास में भी बड़ी महत्वपूर्ण रही है। पंजाब का बंटवारा हो चुका है, पर देश के बंटवारे से पहले का सम्मिलित पंजाब हमारे देश के सांस्कृतिक विकास में निश्चय ही पेश था। मुहम्मद इकबाल, पंजाब के ही रहने वाले थे। फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ भी पंजाब के ही थे। अलग-अलग भाषाओं को भले ही पंजाबी लेखकों ने अपनाया हो, पर उनकी साहित्यिक देन से इन्कार नहीं किया जा सकता। मुल्कराज आनन्द, रजिन्दरसिंह बेदी, अमृता प्रीतम, कृष्ण चन्दर, साहिर लुधियानवी, खुशवंतसिंह, यशपाल, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, उपेन्द्रनाथ, अश्क, मोहन राकेश, कृष्णा सोबती आदि-आदि इन सभी ने पंजाब का नाम रोशन किया है और देश के साहित्य को समृद्ध बनाया है। गिने चुने नाम दोहराने से कई बार उस सारी सांस्कृतिक देन का अंदाज़ नहीं हो पाता जिसमें पंजाब की देन समूचे भारत के लिए महत्वपूर्ण रही है। फिल्मों को ही लें, इस क्षेत्र में पंजाबी ही पेश मेश रहे हैं, पृथ्वी राज, दिलीप कुमार, कन्हैया लाल, सहगल, बलराज साहनी, राजकपूर, देव आनन्द, कोई किस-किस का नाम गिनायें, निर्देशक भी और अभिनेता भी।

स्वतन्त्रता आंदोलन के दिनों में पंजाब में होने वाले साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष ने देश भर को अनुप्राणित किया था। जलियांवाला का काण्ड पंजाब में ही हुआ था, जनरल ओड्वायर के काले कारनामे के तहत सैकड़ों पंजाबी मौत के घाट उतारे गये थे। बलिदान की भावना से उत्प्रेरित लाखों लाख पंजाब निवासी, देश की जनता के साथ कंधे से कंधा मिला कर विदेशी राज्य के विरुद्ध जूझते रहे थे। भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में पंजाब की देन किसी से कम नहीं है। भगतसिंह की शहादत ने देश के कोने-कोने में नौजवानों के दिलों में देशभक्ति की भावना को उभारा था। आजादी का संघर्ष पंजाब में भी वैसे ही हिलोरें लेता हुआ आगे बढ़ रहा था। जैसे देश के अन्य भागों में।

आज़ादी के बाद, देश के निर्माण कार्यों में पंजाब की देन को देखते हुए कोई भी पंजाबी गर्व से अपना सिर ऊंचा उठा सकता है। कौन नहीं जानता कि पंजाब खेतीबाड़ी की दृष्टि से पिछड़ा हुआ प्रदेश था, और कौन नहीं जानता कि आज वही पिछड़ा हुआ प्रदेश अनाज की पैदावार में सबसे आगे है और समूचे देश को कंधा दिये हुए है। वैसी ही तरक्की कल-कारखानों ने भी की है तथा यातायात और अन्य क्षेत्रों में। यह पंजाब की संस्कृति का ही गुण है कि जहां लाखों-लाख शरणार्थी बेघर होकर पाकिस्तान से आये थे वहां कोई विरला ही पंजाबी मांग कर खाता हुआ, या किसी के सामने हाथ फैलाता हुआ देखा गया था। पंजाब की संस्कृति में आत्म-सम्मान, आत्म-विश्वास गहरी मानवीय सद्भावना कूट-कूट कर भरी है।

इसमें शक नहीं कि देश का बंटवारा हो जाने से पंजाब के सांस्कृतिक विकास को नुकसान पहुंचा है, इसके बावजूद कला और साहित्य तथा सांस्कृतिक मूल्यों के विकास में पंजाब का योगदान बराबर बना रहा है। आज हम एक सांस्कृतिक संकट में से गुज़र रहे हैं—धर्मांधता, साम्प्रदायिकता, निश्चय ही उस सांझे सभ्याचार की दुश्मन हैं, उस पंजाबियत के जो हमारे प्रदेश में पनप रहा था। इससे पंजाबियत में दरार पड़ रही है। देश के दुश्मन पंजाबियों के बीच, धर्म के आधार पर एक खाई पैदा कर रहे हैं। अगर वे कामयाब हो गये तो पंजाब की अमूल्य संस्कृति चौपट हो जायेगी। हम पंजाबियों को सदा इस बात पर गर्व रहा है कि हम फ़रागदिल लोग हैं, दिलेर और सहनशील भी। संकीर्णता और साम्प्रदायिकता पंजाबी स्वभाव का अंग नहीं है। पर यह भी सच है कि हम लोग भड़कावे में आते रहे हैं और भड़कावे में आकर हम पर जुनून सा हावी हो जाता रहा है। यही जुनून अब फिर भड़काया जा रहा है। देश के दुश्मनों को हमसे कोई हमदर्दी नहीं है। वे हमें लड़ाकर अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं। इसलिये आपस में लड़ना देश के दुश्मनों के हाथ मज़बूत बनाना और अपने पांवों पर कुलहाड़ी मारना ही है।

यदि अतीत में पंजाब ने देश के सांस्कृतिक विकास में अमूल्य योगदान दिया है तो इसलिए कि रचनात्मक प्रतिभा पंजाब के खुले वातावरण में सांस लेती रही है, परस्पर सद्भाव और सांझे सभ्याचार के वातावरण में। और यदि भविष्य में पंजाब को अपना सांस्कृतिक विकास करना है तो भी उसी सद्भावना पूर्ण और खुले वातावरण में संभव होगा। मारकाट, घृणा द्वेष और वैमनस्य के वातावरण में यह संभव नहीं। इस प्रकार का द्वेषपूर्ण वातावरण न केवल पंजाब के लिये घातक है, बल्कि इनसे उन महान गुरुओं और पथ-प्रदर्शकों का भी अपमान होता है जिनके दिखाये हुए मार्ग पर चलने का हम दम भरते हैं। □

—268 सत्य निकेतन, मोतीबाग, नानकपुरा, नयी दिल्ली

अपनी तलाश में

— फिक्र तौंसवी

मैं पहले तो सालोंसाल भगवान की तलाश में रहा जबकि इसकी कोई खास जरूरत नहीं थी। क्योंकि भगवान के बगैर भी, जिंदगी खासी कट रही थी।

मेरे मोहल्ले में रंगीराम धोबी रहा करता था। भगवान से उसके सम्बन्ध न तो मैत्रीपूर्ण थे और न ही तनाव पूर्ण। एक प्रकार से निरपेक्ष सम्बन्ध थे। मगर इसके बावजूद वह भली प्रकार जीये जा रहा था। आज तक भगवान को ढूंढने की उसने न कभी इच्छा की और न कभी कोशिश की। दरअसल उसके पास भगवान को ढूंढने की फुर्सत भी नहीं थी। मोहल्ले भर के मैले कपड़े इकट्ठे करना, दाग-धब्बे दूर करना और इन्हें उजला बनाना—ऐसे में फुर्सत कहां। वह भगवान की बजाय ग्राहक को तलाश करना ज्यादा जरूरी समझता था।

एक बार उसकी पत्नी, मोतिया भगवान की तलाश करने के लिए ब्रह्मकुमारियों की तरफ चली गई और फिर लौट कर नहीं आई। भगवान को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते पति भी हाथ से निकल गया। तभी से रंगी राम के, भगवान से सम्बन्ध तनाव पूर्ण हो गए हैं और निरपेक्ष रहने की भी जरूरत नहीं रही क्योंकि भगवान स्वयं उपेक्षित हो गया था।

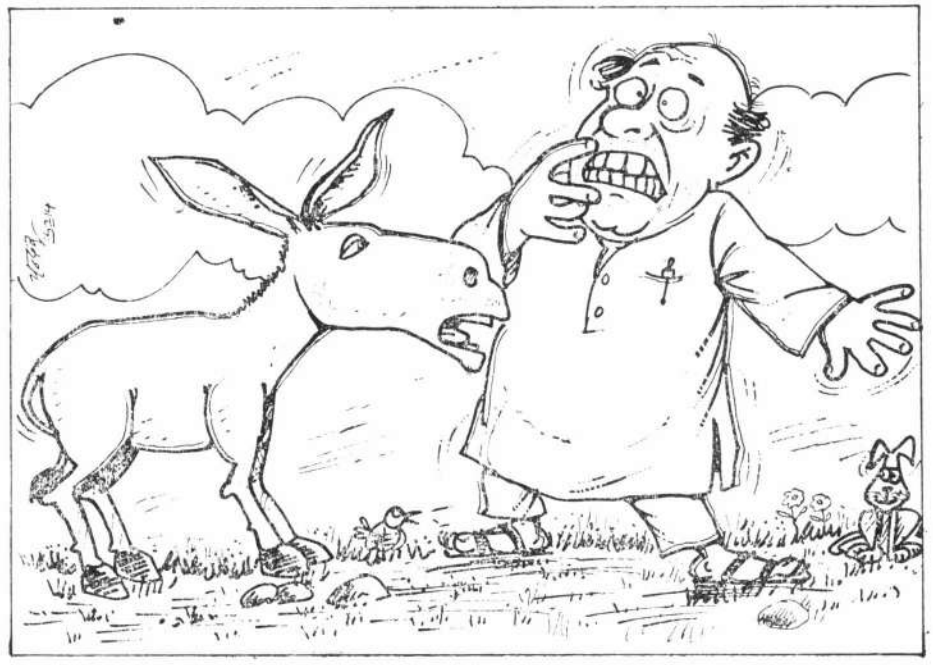
पहले भगवान के बगैर और अब पत्नी के बगैर उसकी गुजर बसर खासी हो रही थी मगर मेरी पोजीशन रंगीराम से थोड़ी भिन्न थी।

मैं गलत ज्यादा और सही कम अपने आपको बुद्धिजीवी समझता था। और हर बुद्धिमान की यह ट्रेजडी है कि वह भगवान के बारे में, अपने सीने में एक नर्म सा गोशा रखता है। जन-भाषा में इस नर्म गोशे को भगवान का धड़का भी कहा जाता है।

बुद्धिमान इस धड़के को औरों की दृष्टि से छुपा-छुपा कर रखता है। और प्रत्यक्ष रूप में कहता है कि भगवान मेरे वश में है, लेकिन……?

और यही लेकिन-मेरी भी ट्रेजेडी थी। मैं समझता था कि जीवन आखिर है क्या ? यही ना, कि कभी आंसू बह निकलते हैं, कभी मुस्कराहट फूट पड़ती है और अगर भगवान मिल भी जाए

पहले गधा और अब उल्लू
कितना बेतुका और दोगला है
यह फिक्र तौंसवी।
मगर लोग फिक्र तौंसवी की
इज्जत करते हैं
उल्लू की नहीं
इसलिए मैंने उल्लू से कहा,
"एक बार फिर सोच लो
कहीं तुम्हें गलतफहमी
तो नहीं हो रही।"
"अपने बारे में गलतफहमी
इंसानों को होती है
उल्लुओं को नहीं ‥ "



तो भी ये आंसू और मुस्कराहट जीवन के साथ लिपटे रहेंगे। भगवान इस सिस्टम में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता और फिर जो भगवान, इन्सानों से आंसू छीन ले, मुस्कराहट दे दे—या मुस्कराहट छीन कर केवल आंसू दे दे, मैं उसे भगवान ही नहीं मानता।

मगर विद्ववानों, विचारकों, और दार्शनिकों ने भगवान का इतना प्रोपेगन्डा कर रखा था कि कई बार यों ही जी चाहता था कि भगवान का अता-पता लगा ही लिया जाए। जैसे कोई नेता भाषण दे रहा हो तो यों ही जी चाहता है कि उसे सुना जाए कि उसे आखिर कौन सी मुसीबत आन पड़ी है बल्कि कई लोग तो लीडर का भाषण इसलिए भी सुनते हैं ताकि उस पर गंदे अंडे फेंक सकें सिर्फ यह देखने के लिए कि अंडे की गंदगी भाषण की गंदगी में कुछ वृद्धि करती है या नहीं।

—मगर भगवान कहां मिलेगा ?

एक विद्ववान से पूछा, जो विद्ववता से पूर्ण अपनी किसी पाण्डुलिपि में चौथी बार सुधार करने में व्यस्त था। उसने बताया कि उसे भगवान का एड्रेस मालूम नहीं है। पाण्डुलिपि पूरी हो जाए तो शायद मालूम हो सके। एक मूर्ख से पूछा। उसने कहा कि वह तो संसार में अजनबी है। एक व्यंग्य लेखक से अनुरोध किया कि अगर भगवान का अस्तित्व है तो नज़र क्यों नहीं आता ? उसने यह कहकर टरका दिया कि जैसी दुनिया उसने बनाई है उसके बाद तो वह किसी को मुंह दिखाने के काबिल नहीं रहा।

अतः कई साल भगवान के ठीक एड्रेस की खोज करने में लग गए। भगवान तो क्या उसका एड्रेस तक नहीं मिला।

—एक सयाने ने सलाह दी भगवान के पी. ए. से मिलिए'

—क्या मतलब ?

"जैसे किसी लीडर से भेंट करनी हो तो पहले उसके पी. ए. को कोन्टेक्ट करना पड़ता है और भगवान को मिलना हो तो·····?

—"तो भगवान का पी. ए. कौन है ?"

—"उसका भक्त"

—इसीलिए भगवान के कई भक्तों से निवेदन किया कि इस खाकसार की रसाई करवा दीजिए। उन्हें चढ़ावे तक दिए लेकिन जिस तरह लीडर दो जगहों पर व्यस्त रहता है, इमरजैंसी मीटिंग में या बाथरूम में। उसी तरह वह भक्त भी यह कह कर पेशियां देते रहे कि भगवान दुनिया की महत्वपूर्ण समस्याएं हल करने में व्यस्त है। इसलिए इन्तजार कीजिए (चढ़ावा देते रहिए) भगवान का घर भी एक प्रकार का बाथरूम है, ज्योंही वह वहां से बाहर निकला, आपका परिचय करा देंगे।

जब भगवान और लीडर को एक ही स्तर पर देखा, तो प्रभु के प्रभुत्व पर शक होने लगा।

फिक्र तौंसवी



जन्म : 7 अक्तूबर, 1918 ; ग्राम तौंसा, डेरा गाजी खां (पाकिस्तान)। अब तक 18 पुस्तकें—तेरह उर्दू और पांच हिंदी में। उर्दू दैनिक मिलाप में 25 वर्षों तक 'प्याज के छिलके' शीर्षक से व्यंग लेखन। सम्प्रति : स्वतंत्र लेखन।

और फिर यह सुनकर और भी ग्लानि हुई कि जिस प्रकार कई लीडरों के पी. ए. भी अब बाथरूम में रहने लगे हैं उसी प्रकार प्रभु के भक्त भी बाथरूम में समय काटते हैं। बल्कि, कई भक्त तो चरस और अफीम की स्मगलिंग में भी गिरफ्तार हो चुके हैं। अतः मैं लीडर और भक्त दोनों से मायूस हो गया। और यूं भगवान की खोज में समय नष्ट करने के बाद फैसला किया कि शहर की दीवारों पर 'सुरमा-नूर-ए-चश्म' के इश्तहार, मेहनताना लेकर लिखे जाएं। समय का यह इस्तेमाल ज्यादा बेहतर है।

अतः स्याही और ब्रुश से यह इश्तहार लिखने लगा। जो नज़र भी आ जाते थे और उनकी कृपा से दो रोटियां भी मिल जाती थीं। इन रोटियों में एक विशेष जाना-पहचाना आनन्द मिलता था। बल्कि एक बार तो मैं रोटी को ही भगवान समझने लगा। और जब मैंने मन्दिर के एक महन्त के सामने भगवान को एक रोटी कह दिया तो उसने इस गुस्ताखी पर मुझे फेंट डाला और फेंटने में उसे वही आनन्द मिला जो मुझे रोटी खाने में मिलता था।

लेकिन जब मैं रोटी कमाने और खाने में भगवान को करीब-करीब भूल चुका था तो अचानक एक विद्वान पर नजर पड़ी, जो एक भरी सभा में लेक्चर दे रहा था।

"भाइयो और बहनो ! भगवान को पाने का सबसे आसान नुस्खा यह है कि किसी भी जर्रे कशा को उठाओ और भगवान का स्पर्श पा लो। भगवान तो जर्रे-जर्रे कशा-कशा में विद्यमान हैं।"

इसलिए मैंने जर्रे उठा-उठा कर देखने शुरू कर दिये (कई लोगों ने उसे खाक छानना भी कहा) जब रोटी खाने से थोड़े से क्षण मिलते, किसी न किसी जर्रे को उठा लेता। बल्कि एक दिन जर्रे पर जर्रा खोजने टिटोलने और झिझोड़ने में इतना व्यस्त रहा कि रोटी भी ना खा सका। दिन भर भूखा प्यासा रहा। (कई महानुभावों ने उसे घोर तपस्या का नाम दिया) मगर किसी जर्रे में भी भगवान नज़र न आया। बल्कि भगवान के

बजाए कुछ चीजें नज़र आईं। उदाहरणतया एक जर्रे के नीचे झांका तो एक शायर बैठा हुआ दिखाई दिया। मैंने पूछा "क्या तुम भगवान हो ?" वह बोला, "नहीं, मैं केवल शायर हूं। एक शेर अर्ज किया है कि:—

"मैंने शेर सुनकर दाद दे दी। मगर वह ठंडी सांस भरकर बोला "जो भी आता है दाद दे जाता है कोई भी ऐसा नहीं आता जो एक सौ ग्राम दाल ही दे जाए"

यह भगवान नहीं हो सकता। यह तो सौ ग्राम दाल का भूखा है।

इसी प्रकार एक जर्रे में एक स्मगलर बैठा दिखाई दिया, जो मुझे इन्कम-टैक्स ऑफीसर समझ कर भाग खड़ा हुआ। एक और जर्रे में फ्रीडम फाईटर बैठा हांफ रहा था। एक में इमारती मज़दूर, एक में तराजू वाला और एक जर्रे के नीचे से तो एक लीडर निकल आया, जो मुझे श्रोता समझ कर बेलगाम भाषण देने लगा।

और श्रोता भाग गया। जब दम लिया तो वहां पास ही एक जर्रे ने आवाज दी "मुझे उठाओ" मैंने उसे उठाकर आखों से लगा लिया। वह मेरी आंखों में जाकर चुभने लगा। बहुत दुःख हुआ कि यह कैसा भगवान है। यह तो चुभता है।

आखिर तंग आकर आसमान की ओर देखा और चीखकर कहा "हे भगवान, तू कहां है ? आसमान से तुरन्त उतर आ-ऐ भगवान, भगवान तू कहां है ?"

मैं हैरान हुआ। यह भगवान तो बस गुम्बद की आवाज है। इसके अलावा और कुछ नहीं।

मगर···मेरी चीख सुनकर (शायद) एक भले आदमी ने पूछा "मियां क्यों चीख रहे हो"

"भगवान को आवाज दे रहा हूं।—मगर वह न सुनता है, न मिलता है"

"कह ! कह ! ! कह !!!"

"भगवान को खोजने वाले का मजाक उड़ाते हो"

"नहीं मियां। भगवान को ढूंढना है, तो पहले अपने आपको ढूंढो। भगवान तो तुम्हारे अन्दर विद्यमान है। अपने आपको ढूंढो, भगवान मिल जायेगा। मैं मजाक नहीं कर रहा, एक नेक सलाह दे रहा हूं।"

इस दुनिया की ट्रेजैडी यह कि यहां नेक इंसान पैदा हो गए हैं ··मगर फिर भी भगवान को पाने का यह फार्मूला कुछ शार्ट कट दिखाई दिया। खुद को ढूंढना कौन सा मुश्किल है ?

और एक दिन मैं अपने आपको ढूंढने के लिए निकल खड़ा हुआ।

मगर यह प्रयत्न कहां से शुरू किया जाए। बड़े बूढ़ों से एक सूक्ति सुन रखी थी कि खैरात घर से शुरू होनी चाहिए। चुनांचे मैंने कई जेब कतरे देखे जो इस सूक्ति पर अमल करते थे।—यानी सबसे पहले अपने बाप का बटुआ चुराते थे। मैंने भी घर से ही प्रयत्न शुरू किया और अपने इकलौते बेटे से भी ज्यादा इकलौती पत्नी से पूछा—'मैडम, क्या तुमने कभी फिक्र तौंसवी को देखा है ?'

'कौन फिक्र तौंसवी, मेरे सरताज ?

अब ताज की भी एक ट्रेजैडी है कि जो बादशाह उसे पहने वह स्वयं उसे नहीं देख सकता। या दूसरे उसे, कह सकते हैं या आईना बता सकता है कि आपके सिर पर ताज है। मैंने पत्नी से कहा 'श्रीमती जी, यह बेकार की परम्परा छोड़िये और यह बताइये कि आपका वह आइना कहां है, जिससे तुम्हारा ताज देख सकूं ? शर्म और मुस्कराहट को पल्लू में चबाकर के बोली मेरा आइना तो आप ही है।

—मैं ? आइना भी और ताज भी ?'

मुझे घर की खैरात से सख्त मायूसी हुई। यानी जेबकतरा भी मैं हूं और बटुआ भी मैं हूं। ऊंहूं।

अपने आपको पत्नी की आंख से देखना बेकार है। यहां तो सिरे से आंख ही गायब है।

पत्नी में श्रद्धा थी, समर्पण था और था प्रेम। और प्रेम तो अन्धा होता है। अन्धों से फिक्र तौंसवी का पता कैसे चल सकेगा ? मैंने चारों ओर नज़र दौड़ाई। पत्नी, बेटी, मां, बेटे, मित्र—यह सभी अन्धे हैं। किसी आंखों वालों से पूछना चाहिए।

मेरी पत्नी ने मुझे परेशान देख कर कहा—"क्या आपको मेरी वफा पर एतबार नहीं है—?"

और मैंने उसके होठों को चूम लिया। जिसमें वह डूब गई, खो गई और ज्यादा अन्धी हो गई।

इन प्रेम करने वालों की दुनिया को छोड़ मैंने घृणा करने वालों की ओर ध्यान किया। क्योंकि ये लोग अन्धे नहीं होते, इनके पास एक ऐतिहासिक दृष्टि-कोण होता है। कई बार ऐसा भी होता है कि वे ऐसी चीजें भी देख लेते हैं जो मूलतः हुई ही नहीं होती। अतएव मैं एक ऐसे व्यक्ति के पास गया जिसको मैंने उधार दे रखा था। वह दस वर्ष पहले मुझसे उधार ले गए थे। जब भी मुझे मिलते मेरी सहनशक्ति की सराहना करते और मैं पिछले दस सालों से इस सराहना की जुगाली कर रहा था।

मैंने पूछा—श्रीमान् क्या आपने फिक्र तौंसवी को कहीं देखा है"

—"फिक्र तौंसवी ? कौन है, क्या काम करता है।"

"सुना है बहुत बड़ा व्यंग्यकार है मगर सिर्फ सुना है, मिल नहीं पाया।"

"अरे हां-हां अच्छा वह फिक्र तौंसवी ? समझ गया। मगर छोड़िये जी, वह भी कोई आदमी है। मैंने तो उस मनहूस की दस वर्ष पहले शक्ल देखी थी, इसके बाद·····

"आप उस पर तीन हरफ भेजिए। मुझसे मिलिए। कोई

सेवा हो तो बताइए, आपके लिए तो जान कुर्बान कर सकता हूं।"

मैंने उसकी कुर्बानी किसी और अवसर के लिए स्थगित कर दी। मगर ये कैसे लोग हैं। जिस व्यक्ति से राम-राम भी नहीं, उसके लिए जान कुर्बान कर देते हैं।

अतएव मैं उससे निराश होकर उस व्यक्ति को मिला, जिस से कभी एक सौ रुपये उधार लिए थे और जिसके बदले में, वह पौने तीन सौ रुपए ब्याज वसूल कर चुका था। उनकी सेवा में प्रार्थना की—"क्यों महाशय, क्या आप फिक्र तौंसवी को जानते हैं?"

"हां,"—वह पान की एक पीक फर्श पर और दूसरी मेरी पतलून पर उड़ेलते हुए बोले—"राम, राम सुबह-सुबह किसका नाम ले लिया। मुंह का स्वाद ही खराब कर दिया।"

चारों तरफ नज़र दौड़ा कर और बहुत से लोग खोज डाले। उन्हें भी, जो मुझसे अनन्त प्रेम करते समय भी सोचते थे कि झूठ बोल रहे हैं। एक शायर से पूछा, जिसकी वजन से गिरी हुई गजलों की तारीफ से मैं हमेशा कतराता रहा कि इससे मेरा अपना वजन गिर जायेगा। एक भूतपूर्व प्रेमिका के पास गया—जो मेरे इश्क को तराजू में तौला करती थी। और आजकल गुड़ के व्यापारी की बीवी बन चुकी थी, क्योंकि मेरा इश्क गुड़ की बोरी के वजन से हल्का था। एक राजनीतिज्ञ से पूछा जो सोशलिज्म को सोडावाटर समझकर विह्स्की के पेग में डालकर पी जाता था। एक पुजारी से पूछा जो भगवान तक को जानता था मगर फिक्र तौंसवी को नहीं जानता था।

इसलिए मैंने और विद्वानों और पैनी आंख रखने वालों से अनुरोध करने में अपनी हेटी समझी कि ये तो उस शायर की तरह हैं जिसे दो-चार शेअरों पर दाद न मिली तो यह कह कर माईक से हट गया था कि बाकी शेअर भी इस तरह के हैं।

और फिर सोचा कि दुनिया के इन बौने लोगों से काम नहीं चलेगा। ये तो बालिश्तिए हैं। अपने छोटे से खोल में सिमट कर अन्तहीन ऊंचाइयों को ढूंढ़ने में व्यस्त हैं। इसलिए मैं भगवान की मनुष्य से हीन रचना की ओर आकर्षित हुआ। घर के सामने खाली प्लाट में घास चरता हुआ एक गधा दिखाई दिया। करीब जाकर पूछा "अल्सलाम-वालेकुम"

उसने जवाब में हल्के से गर्दन हिलाई। यह शायद उसकी "वालेकुम अल्सलाम" थी—यह तो खासी अरबी जानता है। मैंने उससे फिर कहा—"थैंक-यू। जनाब का शुभ नाम?"

वह बोला—"इस नीच को फिक्र तौंसवी कहते हैं॥"

फिक्र तौंसवी?—यह तो मुझे घर के पास ही मिल गया। मगर यह गधे के रूप में क्यों मिला—"नहीं मैं गधा नहीं हो सकता, दुनिया क्या कहेगी" परेशान होकर पूछा "माफ कीजिए, आप ओरिजिनल गधे हैं या उन्नति करते-करते बन गए।"

"ओरिजिनल ही समझिए। उन्नति करना तो इन्सानों का काम है जो विद्या और बुद्धि के भण्डार होते हैं। गधे तो बस बोझ ढोते हैं। घास खाते हैं और भगवान की लीला देखते हैं।"

"क्या आपने कभी विद्वान बनने की कोशिश नहीं की?"

"की थी मगर हज्म नहीं हुई। बाद में पता चला कि विद्वता तो तोली और बेची जाती है। इसका एक भाव होता है। भाव में भी वैरायटी होती है। इसलिए विद्वान बनने की धुन छोड़ दी, और गधे का गधा ही रहा"

मैंने अनुभव किया कि यह गधा (चलो फिक्र तौंसवी ही सही।) बातचीत में तो गधा नहीं लगता। मगर···

मगर...इतने में गधे का मालिक हाथ में डण्डा लिए आ पहुंचा। तड़ाख से फिक्र तौंसवी पर रसीद किया और बोला, "साले, तुम तो कहते थे वह सांवली गधी तुमसे इश्क करती है। मगर वह तो जीवनदास के गधे के साथ भाग गई..."

"क्या हर्ज है। उस गधे में ज्यादा आकर्षण मिला होगा। किसी के सिर पर तलवार लटका कर थोड़े ही कहा जा सकता है "मुझसे इश्क करो"

सेठ तड़प उठा—"मगर मैंने तुम्हारे कहने पर उसके लिए कीमती जीन खरीद रखी थी" गर्दन के लिए रंगीन घुंघरू, रहने के लिए एक छप्पर। मेरा ख्याल था कि वह भी तुम्हारे साथ मेरा बोझ ढोयेगी। मगर अब इन चीज़ों की कीमत कौन अदा करेगा?"

"यह नाचीज करेगा"

"कैसे अदा करोगे?"

गधे ने गर्दन झुका ली और मालिक से कहा "अदा करना मुश्किल नहीं। यह लीजिए। मुझे तीन, चार, पांच डंडे रसीद कीजिए। घास बन्द, दुगुना बोझ लादिए। जब तक नुकसान पूरा न हो मेरे साथ बुद्धिमान का सा सलूक कीजिए"

—और मैं देखता रह गया, फिक्र तौंसवी मिल तो गया था मगर फिर हाथ से निकल गया।

यह फिक्र तौंसवी तो एक मुसीबत है। इसका मिलना भगवान के मिलने से भी मुश्किल नज़र आता है। भगवान हर जगह मौजूद है, मगर नज़र नहीं आता। फिक्र तौंसवी भी भगवान की तरह मौजूद तो है। नज़र भी आता है, मगर हाथ नहीं आता। एक झौंका हवा का है जो हाथ से छू तो जाता है, मगर पकड़ में नहीं आता।

मैंने फिर आसमान की तरफ देखकर कहा, "हे फिक्र तौंसवी तुम कहां हो?" खंडहर पर बैठे एक उल्लू ने जवाब दिया, "मैं यहां हूं।"

"मगर तुम तो उल्लू हो।"

"उल्लू ने हां में गर्दन हिला दी।

पहले गधा और अब उल्लू—कितना बेतुका और दोगला है यह फिक्र तौंसवी! मगर लोग फिक्र तौंसवी की इज्जत करते

(शेष पृष्ठ 57 पर)

पंजाब समृद्धि के पथ पर सबसे आगे— सामाजिक सुधारों का परिणाम

□ क्षितीश वेदालंकार

भारत एक विचित्र देश है। इसकी विचित्रता का वर्णन करते हुए योगिराज अरविन्द घोष ने लिखा है—'भारत एक ऐसा विचित्र देश है जो किसी बात को या तो पूरे मन से स्वीकार करता है, या सर्वथा अस्वीकार कर देता है, कोई बात उसके ऊपर जबर्दस्ती थोपी नहीं जा सकती।'

उसके साथ ही एक विचित्रता और भी है। जलवायु, खान पान, रीति-रिवाज, वेश-विन्यास इत्यादि की इस देश में इतनी भिन्नता है कि अनेक पाश्चात्य विचारक इसे एक देश कहने के बजाय उपमहाद्वीप कहना पसन्द करते हैं। परन्तु सारे देश में कुछ ऐसी सांस्कृतिक और आध्यात्मिक एकता भी विद्यमान है कि किसी एक प्रदेश में जो लहर चलती है, धीरे-धीरे वैसी ही लहर अन्य प्रदेशों में भी चल पड़ती है।

उदाहरण के लिए, भक्तिकाल को ले सकते हैं। 15 वीं और सोलहवीं सदी में भक्ति की कुछ ऐसी लहर चली कि वह दक्षिण से शुरू होकर पूर्व, पश्चिम और उत्तर भारत तक जंगल की आग की तरह फैलती चली गयी। इसी से लगता है कि बाह्य रूप से अनेकानेक भेद होते हुए भी इस देश की आत्मा एक है। आध्यात्मिक एकता का यह सूत्र इतना प्रबल है कि आक्रमण-कारी विदेशी शक्तियों की सत्ता और अनवरत प्रहार भी उस सूत्र को छिन्न-विच्छिन्न नहीं कर सके।

इसी प्रकार जब देश में सामाजिक सुधार की लहर चली, तब वह भी किसी एक प्रान्त या प्रदेश तक सीमित नहीं रही, प्रत्युत वह भी देशव्यापी स्तर पर छा गई। 18वीं और 19वीं सदी को देश भर में सामाजिक सुधार की लहर का युग भी कह सकते हैं। उस युग में मुगल साम्राज्य अपने पतन के कगार पर था और ब्रिटिश साम्राज्य उत्थान की ओर अग्रसर होता हुआ धीरे-धीरे सारे देश को अपने पंजे में समेट रहा था। पाश्चात्य संस्कृति और अंग्रेजी भाषा, अंग्रेजी रहन-सहन और रीति-रिवाज से इस देश के निवासियों का प्रथम परिचय हो रहा था। आंग्ल सत्ता अपनी श्रेष्ठता के मद में थी और भारतीय जन-मानस हीनता बोध से निकल कर अपनी अस्मिता बचाने के लिए बेचैन था। राजनीतिक पराधीनता की आन्तरिक वेदना ने समाज के मनीषियों को अपनी सामाजिक दुर्बलताएं मिटाने के लिए प्रेरित किया। सामाजिक सुधार की वह लहर ही अपने उत्तरकाल में राजनीतिक चेतना की संवाहक बनकर देश की स्वतंत्रता का कारण बनी।

पंजाब में ब्रिटिश साम्राज्य सबसे अन्त में आया, इसलिए उससे पहले दक्षिण भारत, पश्चिमी भारत और पूर्वी भारत में जो सामाजिक सुधारों के आन्दोलन चले थे, उनका प्रवाह धीरे-धीरे पंजाब की ओर भी मुड़ा। दक्षिण भारत में थियोसोफी, पश्चिमी भारत में प्रार्थना समाज और पूर्वी भारत में ब्रह्मसमाज के नाम से जो आन्दोलन चले, वे मूलतः धार्मिक आन्दोलन थे, पर उनका उद्देश्य समाजिक सुधारों को भी गति देना था। विज्ञान के आगमन ने सभी मत-मतान्तरों को अपनी विज्ञान-विरुद्ध मान्यताओं पर पुनर्विचार के लिए प्रेरित किया था और भारतीय समाज को भी अपनी कुरीतियों का निवारण करके अपने आपको श्रेष्ठ समझने वाले आंग्ल-समाज के समक्ष छाती तान कर खड़े होने को सन्नद्ध किया था।

इन्हीं आन्दोलनों के समकक्ष था आर्यसमाज के नाम से चला आन्दोलन। यह आन्दोलन पश्चिम भारत से शुरू हुआ था। क्योंकि इसके प्रवर्तक स्वयं पश्चिमी भारत में जन्मे थे। आर्य-समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती 19वीं सदी के प्रारम्भ में काठियावाड़ गुजरात (टंकारा, मौर्वी राज्य) में जन्मे और सन् 1875 में उन्होंने बम्बई में प्रथम आर्यसमाज की स्थापना की। इतिहास की दृष्टि से यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का जन्म भी गुजरात काठियावाड़ (पोरबन्दर) में हुआ और अ. भा. राष्ट्रीय कांग्रेस की प्रथम स्थापना भी बम्बई में ही हुई।

आर्य समाज

अपने समय में थियोसोफी, प्रार्थना समाज और ब्रह्म समाज—इन तीनों आन्दोलनों ने अपने-अपने प्रदेशों में शिक्षित समाज को अधिकाधिक प्रभावित किया।

उनके साथ ही जन्मा आर्यसमाज का आन्दोलन प्रत्येक चीज में 'स्व' पर जोर देता था। स्वभाषा, स्वराज्य, स्वदेश, स्व-संस्कृति, स्वधर्म—इन सब पर निरन्तर बल देने के कारण इस अपेक्षाकृत नए आन्दोलन की लोकप्रियता बढ़ती गई और एक समय ऐसा आया कि समस्त हिन्दी भाषी प्रदेशों में यह सबसे प्रबल

आन्दोलन बन गया। समस्त उत्तर भारत में ही नहीं, बल्कि पूर्वी, पश्चिमी और दक्षिणी भारत में भी इस आन्दोलन की गूंज सुनाई देने लगी। आर्य समाज आन्दोलन की लोकप्रियता का एक कारण यह भी था कि उसने सामाजिक सुधारों पर जिस तीव्रता से बल दिया, उतनी तीव्रता से और किसी आन्दोलन ने बल नहीं दिया। सामाजिक सुधारों के साथ धार्मिक अन्ध-विश्वासों और पाखंडों के विरुद्ध जिस तरह जमकर लोहा आर्य-समाज ने लिया और जिस तरह राष्ट्रीय स्वाभिमान की चेतना उसने जनता में जगाई उसके कारण यह दिन प्रतिदिन लोक-प्रियता के नए आयाम छूता गया। पंजाब का तो वह सबसे सशक्त और सबसे प्रभावित आन्दोलन बन ही गया।

यों तो समस्त देश में शायद ही कोई शिक्षित व्यक्ति होगा जो किसी न किसी रूप में आर्य समाज की विचारधारा से प्रभावित न हो, किन्तु पंजाब में आर्यसमाज की सबसे अधिक सफलता के कुछ मनोवैज्ञानिक कारण भी थे। सारा पंजाब मुस्लिम—बहुल था। अंग्रेजों से पहले जितने भी विदेशी आक्रमण-कारी आए, वे सब उत्तर दिशा से और प्राय: दर्रा-ए-खैबर को ही पार करके आए थे। शकों से लेकर हूण, यूची, तातार, मंगोल, तुर्क, अफगान और मुगलों तक सब आक्रमण कारियों का पहला निशाना पंजाब ही बना। इसलिए निरंतर संघर्ष करते-करते पंजाब के निवासियों में वीरता की एक सहज प्रवृत्ति पैदा हो गई। परन्तु पहले मुगलों की और बाद में अंग्रेजों की अधीनता ने उनमें अपनी अस्मिता को बनाए रखने के लिए प्रबल आक्रोश भी भर दिया। वैचारिक, सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक और राजनीतिक अस्मिता की पूर्ति का जैसा साधन आर्यसमाज के माध्यम से पंजाब की जनता को मिला, वैसा किसी अन्य माध्यम से नहीं। ईसाई धर्म और इस्लाम ने हिन्दू धर्म से अपनी श्रेष्ठता का सिक्का जन-मानस में अपनी सत्ता के बल पर भय और प्रलोभन के द्वारा, जमाया हुआ था। यह केवल आर्यसमाज था जिसने ईसाइयत और इस्लाम की विज्ञान के विरुद्ध और बुद्धि के विरुद्ध मान्यताओं का सबसे पहले खण्डन किया। इसके अतिरिक्त आर्यसमाज ने पौराणिक धर्म की भी बुद्धि-विरुद्ध मान्यताओं का खंडन किया। पंजाब के संबंध में तो यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि शिक्षा के क्षेत्र में, समाज-सुधार के क्षेत्र में और राजनीति के क्षेत्र में पंजाब ने जितने भी गिने जाने योग्य नेता देश को किए, वे निरपवाद रूप से आर्य-समाज की ही देन थे।

जब भारत के आजाद होने के साथ ही देश खण्डित हो गया और मुस्लिम साम्प्रदायिकता और ब्रिटिश कूटनीति के कारण पाकिस्तान का निर्माण हो गया, तब पंजाब भी उन्हीं सामाजिक कुरीतियों का शिकार था जिनसे अन्य प्रान्त आक्रान्त थे। संक्षेप में इन कुरीतियों की गणना इस प्रकार की जा सकती है—

जातिभेद और छुआछूत, स्त्रियों और अछूतों को शिक्षा से वंचित रखना-उनका शोषण और उन्हें समानाधिकार न देना, पर्दाप्रथा, बाल-विवाह वृद्ध-विवाह, अनमेलविवाह, धर्मान्तरण, राष्ट्रीय चेतना का अभाव और अनाथ बच्चों की दुर्दशा, आदि।

आर्य समाज ने जहां वैदिक धर्म के प्रचार पर बल दिया, वहां उक्त कुरीतियों के निवारण में भी उसने अपनी पूरी शक्ति लगाई। सबसे अधिक विदेशी रक्त का मिश्रण होने के कारण पंजाब में जाति-उपजातियों की संख्या भी अन्य प्रान्तों से अधिक थी। वे सब अपनी-अपनी बिरादरियों के हित-अहित पर ही ध्यान देते थे, समस्त हिन्दू समाज या पूरे देश की नहीं।

जातिभेद और छुआछूत इस देश का सबसे भयंकर कोढ़ है और इस कोढ़ को दूर किए बिना देश प्रगति नहीं कर सकता। आर्यसमाज ने इस जाति-भेद और छुआछूत के मूलपर कुठाराघात करते हुए इस सिद्धान्त का प्रचार किया कि ब्राह्मण क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र ये चारों वर्ण जन्म पर आधारित नहीं, गुण-कर्म-स्वभाव पर आधारित हैं। जन्म से न कोई ऊंचा होता है, न नीचा, अपने आचरण से ही मनुष्य ऊंच और नीच बनता है। आर्य समाज ने तथाकथित अछूतों को अपने साथ मिलाने के लिए, सवर्णों और असवर्णों के सम्मिलित सहभोजों का आयोजन किया, उनको यज्ञोपवीत पहनाकर उनकी शुद्धि की, उनकी पाठशालाएं खोलीं और अपने विद्यालयों में भर्ती कर सवर्णों के बच्चों के साथ उनको शिक्षा-सम्पन्न किया। इस शुद्धिचक्र में उसने धर्मान्तरण करके ईसाई या मुसलमान बने विधर्मियों को भी पुन: वैदिक धर्म की दीक्षा देकर हिन्दू जाति के निरन्तर ह्रास पर अंकुश लगा दिया। जिस तरह गुरु नानक के उपदेशों से पंजाब और सिन्ध में हिन्दुओं का मुसलमान बनना रुक गया था, उसी तरह आर्यसमाज के प्रचार से भी हिन्दुओं के धर्मान्तरण पर प्रतिबन्ध लगा। इस शुद्धिचक्र की प्रखरता से घबरा कर ही विधर्मियों ने अनेक कर्मठ आर्य नेताओं पर प्राणघातक वार किए। स्वामी श्रद्धानन्द, पं. लेखराम और महाशय राजपाल की शहादत का मूल कारण यह शुद्धि ही था।

शुद्धि के इस चक्र के साथ पतितोद्धार के लिए भी न केवल पंजाब में, प्रत्युत समस्त भारत में ही, आर्यसमाज ने ऐसा तीव्र आन्दोलन चलाया कि अन्त में देश की एकमात्र राजनीतिक राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस को भी हरिजनोद्धार को अपने कार्यक्रमों में प्रमुख स्थान देने को बाध्य होना पड़ा। अछूतों को 'हरिजन' नाम भी महात्मा गांधी ने सन् 1935 के आसपास ही दिया था, उससे पहले वे आर्यसमाज द्वारा दिए गए 'दलित' शब्द से ही सम्बोधित किए जाते थे। पंजाब में ओड़, रहतिये, मेघ, डूमने चूहड़े, मोहतमे और सिन्ध में वसिब तथा बालमीकि ऐसे वर्ग थे जो अछूत समझे जाते थे। पंजाब के मुजफ्फरगढ़, गुरदासपुर, कांगड़ा, सूयालकोट, कश्मीर में जम्मू इनके प्रमुख स्थान थे। उत्तर प्रदेश में ऐसे ही गढ़वाल और कुमायूं में भी समाज के अनेक वर्ग अछूत कहलाने के अभिशाप से पीड़ित थे। आर्यसमाज

ने हजारों की संख्या में उन्हें शुद्ध किया।

इधर पंजाब में, ऋषि दयानन्द की मृत्यु के पश्चात, आर्य-समाजियों ने उनकी स्मृति के रूप में सन 1885 में दयानन्द ऐंग्लो-वैदिक विद्यालय खोलने का निश्चय किया। शिक्षा के क्षेत्र में बाद में यही डी. ए. वी. आन्दोलन के नाम से देश-विदेश में मशहूर हो गया। आज यह बात सुनकर किसी को भी आश्चर्य हो सकता है कि सबसे पहले विज्ञान की शिक्षा देने का श्रीगणेश किसी कालिज ने किया था तो वह आर्य समाजियों द्वारा स्थापित लाहौर का डी. ए. वी. कालिज ही था। शहीदे आजम सरदार भगतसिंह इसी कालिज से सम्बद्ध रहे थे।

लड़कों की शिक्षा के अलावा पंजाब में लड़कियों की शिक्षा की शुरूआत का श्रेय तो केवल-मात्र आर्यसमाज को ही है। उसी ने सबसे पहले जालन्धर में आर्य कन्या विद्यालय खोला, जो बाद में आर्य कन्या महाविद्यालय, जालन्धर के नाम से विकसित होकर यशस्वी हुआ।

डी. ए. वी. कालेजों और स्कूलों की स्थापना के अतिरिक्त आर्य समाज ने हरिद्वार के निकट गंगा के तट पर गुरुकुल कांगड़ी जैसी आदर्श राष्ट्रीय शिक्षा संस्था की भी स्थापना की। इन संस्थाओं की स्थापना के लिए उस युग के कार्यकलापों को प्रारंभ में कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा, इसकी आज कल्पना करना भी कठिन है। डी. ए. वी. विद्यालय के महात्मा हंसराज ने, गुरुकुल कांगड़ी के महात्मा मुंशीराम ने (जो बाद में संन्यास लेने पर स्वामी श्रद्धानन्द कहलाए) और आर्य कन्या विद्यालय के लाला देवराज और बहन लज्जावती ने यदि अपना पूरा जीवन इन संस्थाओं में न लगाया होता, तो ये संस्थाएं प्रतिष्ठा प्राप्त न कर पातीं। यदि किसी संगठन की सबसे अधिक शिक्षा संस्थाएं चल रही हैं तो वह आर्य समाज ही है। कन्याओं की शिक्षा पर इतना अधिक जोर देने का ही यह परिणाम है कि पंजाब की जो लड़कियां शिक्षा की दृष्टि से अन्य प्रान्तों से पिछड़ी होने के कारण सामाजिक और राष्ट्रीय पटल से नदारद थीं, अब वे जीवन के हरेक क्षेत्र में सबसे आगे हैं। चाहे वह सामाजिक सेवा का क्षेत्र हो, इंजिनीयरिंग या डाक्टरी का क्षेत्र हो, सरकारी सेवा का क्षेत्र हो, वैदेशिक सेवा का क्षेत्र हो, पुलिस और एन. सी. सी. या खेल कूद का क्षेत्र हो, पंजाब की युवतियां सब क्षेत्रों में सबसे आगे मिलेंगी। जहां तक बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह और अनमेल विवाह का प्रश्न है, यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि इस कलंक को दूर करने में भी पंजाब सबसे आगे है। इसे भी कन्याओं की शिक्षा का ही सुपरिणाम कहा जा सकता है।

अनाथ बच्चों की रक्षा के लिए और विधवाओं की सहायता के लिए भी आर्यसमाज ने पंजाब में स्थान-स्थान पर विधवाश्रम और अनाथालय खोले। इसीलिए पंजाब में भीख मांगने वाले सारे भारत में सबसे कम मिलेंगे। पंजाब के लोग वैसे भी मेहनती होते हैं, इसलिए अपने परिश्रम से उन्होंने पंजाब को सारे भारत में सबसे अधिक समृद्ध राज्य बना दिया है। इस समृद्धि का ही यह परिणाम है कि खेतों में, कारखानों में, रेलवे स्टेशनों पर और रिक्शा चलाने वालों में मजदूरी करने वाला कोई विरला ही पंजाबी नजर आएगा। मेहनत मजदूरी के इन छोटे-मोटे कामों के लिए पंजाब से बाहर के ही लोग हजारों की संख्या में प्रतिवर्ष पंजाब आते हैं। वे मजदूर यदि बाहर से न आवें तो न पंजाब के कारखाने चल पावें और न ही फसल की कटाई हो पावे। जात-पांत तोड़कर विवाह की प्रथा भी पंजाब में दिन प्रति-दिन बढ़ती जा रही है।

सामाजिक सुधार की बात करते हुए एक और बात का उल्लेख कर देना भी अप्रासंगिक नहीं होगा। कभी भारतवासी भारत के बाहर सुदूर देशों तक जाया करते थे। उन्होंने पूर्वी एशिया में-जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया, इंडोनेशिया, वियतनाम और इंडोचाइना में अपने राज्य स्थापित किए थे। बोद्ध भिक्षु हिमालय की उत्तुंग चोटियों को और समुद्र की उत्ताल तरंगों को लांघ कर संसार भर के दूरस्थ देशों तक पहुंचे थे। परन्तु मध्य-काल में हिन्दू धर्माचार्यों ने विदेश-यात्रा और समुद्र-यात्रा को पाप बताना शुरू कर दिया। परिणाम यह हुआ कि हम भारत-वासी कूपमण्डूक बनते गए और वैज्ञानिक और औद्योगिक उन्नति में अन्य देशों से पिछड़ गए। जिन गरीब भारतीयों को मेहनत मजदूरी करके अपना पेट भरने के लिए गिगिटिये (शर्तबन्द कुली के रूप में) बनाकर अंग्रेज लोग अपने उपनिवेशों में—जैसे फीजी, मारीशस, केन्या, द. अफ्रीका, गुयाना और सुरीनाम आदि में, ले गए वहां उन भारतीयों को यह मानसिक वेदना सताती रही कि समुद्र-यात्रा के कारण हम तो धर्मभ्रष्ट हो गए। 19वीं सदी में कदाचित् ऋषि दयानन्द ही ऐसे धार्मिक नेता थे जिन्होंने इस भ्रम का खण्डन किया और शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर सिद्ध किया कि विदेश-यात्रा पाप नहीं है। इस बात का भी सबसे अधिक सुफल पंजाब में ही दृष्टिगोचर होता है। पंजाब में शायद ही कोई घर ऐसा होगा जिसका कोई न कोई सदस्य विदेश में न हो। पंजाब के देहात में कई गांव के गांव खाली हो गए हैं, वहां केवल बूढ़े, अपाहिज या सर्वथा असमर्थ लोग ही रह गए हैं। कई तो उन्हीं देशों के नागरिक भी बन गए हैं। इन देशों में कनाडा, अमरीका और ब्रिटेन प्रमुख हैं। प्रकारान्तर से विदेशों में स्थित ये पंजाबी भी पंजाब की समृद्धि में योगदान करते हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार विलासिता की वस्तुएं जितनी अधिक मात्रा में पंजाब में बिकती और खपती हैं उतनी अन्य किसी राज्य में नहीं। विदेश-प्रवास से कुछ नई समस्याएं भी पंजाब में पैदा हुई हैं, पर इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि आधुनिक दृष्टि से इस समय पंजाब सारे भारत में समृद्धि के पथ पर सबसे अगली सीढ़ी पर है।

डी-81, गुलमोहर पार्क नई दिल्ली-49

पुस्तकालयों के लिए संग्रहणीय प्रकाशन

★ गढ़वाल चित्रकला ले. : मुकन्दी लाल 175-00
★ भारतीय शहीदों का परिचय खण्ड-1 45-00
★ भारत में अंग्रेजी राज : खण्ड-1 44-00
ले. : सुन्दरलाल खण्ड-2 40-00
★ भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का खण्ड-2 40-00
इतिहास-ले. : डा. ताराचंद खण्ड-3 35-00
★ बापू के आशीर्वाद ले. : टी. हिंगोराणी 60-00
★ गांधी सचित्र जीवन गाथा ले. : बी. आर. नन्दा 25-00
★ मजरुल हक़ 15-00
ले. : डा. कथामुद्दीन अहमद तथा डा. जटाशंकर झा
★ गोपाल कृष्ण गोखले ले. : टी. आर. डोगिरिकर 14-50
★ मौलाना अबुल कलाम आजाद ले. : अर्श मैलानी 8-50
★ मदन मोहन मालवीय ले. : सीताराम चतुर्वेदी 10-00
★ सैय्यद अहमद खां ले. : के. ए. निज़ामी 6-25
★ संत नामदेव ले. : के. सी. वानखड़े गुरुजी 12-50
★ लाल बहादुर शास्त्री ले. : डा. आर. मनकेकर 13-50
★ मोतीलाल नेहरू ले. : बी. आर. नन्दा 18-00
★ उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द 7-50
★ भारतीय मुस्लिम त्यौहार और रीति रिवाज 10-00
ले. : डा. माजदा असद
★ आकाशवाणी कथा भारती 15-00
★ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 8-00
★ अन्तर्राष्ट्रीय खेल और भारत ले. : देवेन्द्र भारद्वाज 13-00
★ एक पृष्ठ इतिहास का 10-00
(दिवंगत प्रधानमंत्री-इंदिरागांधी के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर आकाशवाणी द्वारा प्रसारित वार्ताओं एवं रूपकों का संकलन)

★ चुनौती भरे वर्ष
(प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरागांधी के 1966 से 1969 तक के भाषणों का संग्रह) सजिल्द 18-00
साधारण 15-00
★ नेताजी संपूर्ण वाङमय (तीन खण्डों में)
खण्ड 1 (सजिल्द) 28-00 खण्ड-2 (सजिल्द) 30-00
साधारण 22-00 साधारण 25-00
खण्ड-3 (प्रेस में)
★ मूल अधिकार और कर्त्तव्य 3-00
★ भारत का आर्थिक इतिहास खण्ड-1 12-00
ले. : आर. सी. दत्त
★ अन्तरिक्ष विज्ञान और भारत 13-00
★ अनजाने में हुए आविष्कार ले. : शुकदेव प्रसाद 7-50
★ ग्रामीण जीवन में विज्ञान ले. : जयप्रकाश भारती 7-00
★ हमारे वन ले. : सुदर्शन कुमार खेतन 9-50
★ हमारे वृक्ष ले. : राजेश्वर प्रसाद नारायणसिंह 11-50
★ भारत के पक्षी ले. : राजेश्वर प्रसाद नारायणसिंह 30-00
★ देश महान हमारा 9-50
★ बुद्धिजीवी और सामाजिक दायित्व 3-50
ले. : शिवमंगलसिंह 'सुमन'
★ जन समाज और संस्कृति 10-00
★ दक्षिण भारत के मंदिर 18-00
★ चतुर्दशी 14-00
★ आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी 5 00
ले. : रामेश्वर उपाध्याय
★ खेल खिलाड़ी ले. : अजय भल्ला 7-00

प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित सभी पत्रिकाओं में से किसी भी एक पत्रिका का वार्षिक ग्राहक बन जाने पर समस्त प्रकाशनों की खरीद पर 10% की छूट। विभिन्न विषयों पर भारत की सभी भाषाओं में उपयोगी पुस्तकें उपलब्ध हैं। निःशुल्क सूची पत्र मंगाइए।

(डाक खर्च मुफ्त)

25 रु. से कम के आदेश पर पंजीकरण शुल्क अतिरिक्त भेजना होगा। पुस्तकें स्थानीय पुस्तक विक्रेताओं से लें अथवा सीधे हमें लिखें :—

व्यापार व्यवस्थापक, विक्रय केन्द्र, प्रकाशन विभाग

★ पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001
★ सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001
★ बिहार स्टेट को-आपरेटिव बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004
★ 10-बी स्टेशन रोड, लखनऊ-226001



'अभिनेत द्वारा मंचित डा. विनय के नाटक 'एक प्रश्न : मृत्यु' में द्रोपदी (अपराजिता), कुंती (शीतल शर्मा) और अंगरक्षक (अर्नेस्ट अल्बर्ट) नाटक का निर्देशन अतुलवीर अरोड़ा ने किया।

पंजाब का हिन्दी रंगमंच : पहचान की तलाश

□ डा. जयदेव तनेजा

पांच नदियों के जल से सिंची पंजाब की परम उर्वरा धरती ने अपनी कोख से जिस आदमी को जन्म दिया है, वह पंजाबी व्यक्तित्व एक ओर विख्यात प्रेम-कथाओं का अति भावुक एवं संवेदनशील नायक है तो दूसरी ओर एक दम आत्म-विश्वासी, परिश्रमी और दुःस्साहसी लड़ाकू जाट। वह ज़िन्दगी को दैहिक स्तर पर ही भरपूर जीने में यकीन रखता है। 'कल्चर' के बजाए 'एग्रीकल्चर' पर अधिक बल देने के कारण ही सम्भवतः देश के इस सबसे धनी प्रदेश को कला-संस्कृति की दृष्टि से प्रायः निर्धन कह दिया जाता है। परन्तु जहां तक लोक-कला और साहित्य-संस्कृति का प्रश्न है, इसे सच नहीं माना जा सकता। भांगड़ा, गिद्धा, झूमर, भांड, रास और नकल जैसे समृद्ध, एवं लोकप्रिय लोक-रूपों तथा संगीत में पटियाला घराने के आधार स्तम्भ खां साहब बड़े गुलाम अली खां और मुनव्वर अली खां जैसे प्रतिष्ठित गायकों के रहते बुल्लेशाह और वारिस शाह की इस धरती को भला कौन निर्धन कह सकता है ? पंजाबी नाटक और रंगमंच की स्थिति आज भले ही मराठी, बंगला, कन्नड़ और हिन्दी के मुकाबले हमें कमजोर दिखाई देती हो, किन्तु बलवंत गार्गी, हरचरण सिंह, भाग सिंह, गुरुशरण सिंह, हरपाल टिवाणा, प्राण सब्बरवाल, देविन्दर एवं जसवंत दमन, अजमेर सिंह औलक, आतमजीत सिंह, मोहन बग्गा, कमल विद्रोही, नवल किशोर, संत सिंह सेंखों, कपूर सिंह घुम्मन, गुरुदयाल सिंह फुल्ल, गुरुचरण सिंह जसूजा, कर्त्तार सिंह दुग्गल, सुरजीत सिंह सेठी, रोशन लाल आहूजा, परितोष गार्गी, अमरीक सिंह, गुरुदयाल सिंह खोसला, आई. सी. नन्दा, बलबीर सिंह जैसे न जाने कितने नाटककार एवं रंगकर्मी अपनी निष्ठा, मेहनत और प्रतिभा के बल पर इसे विकसित और उन्नत करने में लगे हैं। इस बीच विश्व की महान कालजयी नाट्य कृतियों के अनुवाद या रूपांतरण पंजाबी रंगमंच पर काफी अधिक संख्या में किए और देखे गए हैं। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, दिल्ली से गए कुछेक समर्पित स्नातकों के सतत क्रियाकलापों के अतिरिक्त पंजाब और पंजाबी विश्वविद्यालयों ने पंजाब के समकालीन पंजाबी रंगमंच की मौजूदा हालत को बहुत दूर तक प्रभावित किया है और वह दिन दूर नहीं जब यह देश के आधुनिक विकसित रंगमंच से कदम मिलाकर चल सकेगा।

परन्तु दुर्भाग्य से फिलहाल यही बात पंजाब के हिन्दी रंगमंच के बारे में नहीं कही जा सकती। सन् 1960 के आसपास हिन्दी रंगमंच, अपने नये और आधुनिक रूप में, केवल दिल्ली, बम्बई तथा कलकत्ता जैसे महानगरों में ही पल-बढ़ रहा था। सन् 1970 के बाद वह उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार और राजस्थान के अनेक रंग-नगरों तक फैल गया और आज वह महा-

नगरों और बड़े शहरों से आगे बढ़कर एक आन्दोलन की तरह बहुसंख्य कस्बों और गांवों तक लगातार फैलता जा रहा है। इस दौरान पंजाब के गुरुदास पुर, और होशियारपुर तो क्या अमृतसर, जालंधर, लुधियाना और पटियाला तक में हिन्दी रंगकर्म का कोई उल्लेखनीय प्रमाण दिखाई नहीं देता। यह मानने को तो मन नहीं करता कि जिस प्रदेश ने आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच को मोहन राकेश जैसा प्रतिभावान एवं जीवन्त रचनाकार दिया हो, वहां हिन्दी रंगकर्म का नामो-निशान ही नहीं होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि स्कूलों, कालेजों, क्लबों और नितान्त शौकिया नाट्य-दलों ने अवश्य ही कुछेक नाटक हिन्दी में भी अभिमंचित किए होंगे, परन्तु स्तर की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय न होने के कारण उनकी कोई चर्चा राष्ट्रीय समाचार पत्रों या गम्भीर नाट्य- पत्रिकाओं में नहीं हुई। इस दृष्टि से पटियाला के पंजाबी विश्वविद्यालय के 'भारतीय रंगमंच विभाग' का नाम सबूत के तौर पर पेश किया जा सकता है। पटियाला से कृष्ण द्विवेद्वी, हरपाल एवं नीना टिवाणा, राम गोपाल बजाज तथा बलराज पंडित जैसे राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से निकले प्रतिष्ठित निर्देशकों तथा मोहिन्दर संधू, ओमपुरी, जसपाल, राज बब्बर एवं प्रदीप जैसे अभि-नेताओं का गहरा सम्बन्ध रहा है। जुलाई 1972 में चण्डीगढ़ में 'भारतीय रंगमंच विभाग' की स्थापना हुई। बलवंत गार्गी,

'कांच घर' के एक दृश्य में मीता वशिष्ट (लारा), जिम (अर्नेस्ट अलबर्ट) टाम (अतुलवीर अरोड़ा)





जयदेव तनेजा

जन्म 15 मार्च, 1943, ओकाड़ा-पंजाब (अब पाकिस्तान में) हिन्दी की लगभग सभी प्रमुख पत्र-पत्रि-काओं में लेखन। नाट्य-लेखों का विविध भाषाओं में प्रकाशन। पांच समीक्षा-ग्रन्थ-प्रकाशित। 'अभिनय' नाट्य-पत्र का संपादन।

सम्प्रति : दिल्ली विश्वविद्यालय से सम्बद्ध आत्माराम सनातन धर्म कालेज के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक।

अमाल अल्लाना, मोहन महर्षि, तथा कुमार वर्मा जैसे प्रबुद्ध रंगकर्मी इससे जुड़े रहे हैं। एण्टीगनी 'मिट्टी की गाड़ी,' 'डिज़ायर अण्डर द ऐल्मस्,' 'मीडिया', 'भगवद्ज्जुकम,' 'हयवदन,' 'दिलैसन,' 'दि चेयर्स,' 'कंजूस,' 'मत्तविलास,' 'आधे अधूरे,' 'बिच्छू', 'जोसेफ के. का मुकद्दमा' इत्यादि इस विभाग के कुछ चर्चित प्रस्तुतीकरण रहे हैं जिन्हें बलवंत गार्गी, श्रीलता स्वामीनाथन, अमाल अलाना, कुमार वर्मा, रानी बलवीर कौर, जाय माइकेल, कारंत, रैना और मोहन महर्षि ने निर्देशित किया।

अतः हरियाणा का कहो या पंजाब का, केवल चण्डीगढ़ ही एकमात्र ऐसा स्थान है जहां की हिन्दी रंग-गतिविधयों की चर्चा, कभी न कभी, प्रदेश से बाहर भी होती रही है। 1973 में 3 दिसम्बर को, पंजाब विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग ने वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता के निर्देशन में, 'मोहन राकेश की स्मृति में' 'बहुत बड़ा सवाल' (राकेश) तथा वे नाक से बोलते हैं' (सुरेन्द्र वर्मा) नामक दो लघु-नाटकों का अच्छा प्रस्तुतीकरण किया। 1975 में हरीश भाटिया के निर्देशन में 'इंजीनियरिंग कालेज' के छात्रों-प्राध्यापकों ने मिलकर राकेश के बहुचर्चित नाटक 'आधे अधूरे' का अभिमंचन किया। 'यवनिका' नामक नाट्य-संस्था ने दिल्ली से बंसी कौल को आमंत्रित करके उनके निर्देशन में विजय तेंदुलकर के 'खामोश-अदालत जारी है' का प्रस्तुतीकरण करके स्वयं को हिन्दी रंगमंच की मुख्य धारा से जोड़ने की कोशिश की। 'ज्ञान आर्ट्स' चण्डीगढ़ की एक ऐसी संस्था है जिसने नृत्य-नाटिकाओं के अपने प्रदर्शनों से अपनी अलग पहचान बनाने की कोशिश की है। यदि महत्व एवं स्तर के प्रश्न को छोड़ दें तो चण्डीगढ़ में उषा धवन ने ('चित्रलेखा' 'उमराव जान अदा' तथा 'लहरों के राजहंस' से वही काम करने की कोशिश है जो दिल्ली में शीला भाटिया ने अपने महत्वपूर्ण रचनात्मक रंग-प्रस्तुतियों से किया है।

'जनवादी रंगमंच' चण्डीगढ़ के ऐसे रंगकर्मियों की संस्था है जो नाटक को जनता के निकट ले जाने के लिए बेचैन हैं और जिनके लिए रंगमंच मात्र मनोरंजन न होकर सामाजिक परि-

बर्तन के लिए एक जोरदार माध्यम है। 1974 में इस संस्था ने दिल्ली के 'जन नाट्य मंच' द्वारा कविता नागपाल के निर्देशन में प्रस्तुत सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के विख्यात नाटक 'बकरी' के प्रदर्शनों का आयोजन करके चण्डीगढ़ में जन-चेतना की एक नई लहर पैदा कर दी। कालान्तर में, इस दल ने कुमार वर्मा के निर्देशन में 'आषाढ़ का एक दिन' का एक नई व्याख्यावाला प्रस्तुतीकरण भी किया। इस संदर्भ में यहां मुझे गुरुचरण सिंह चानी के 'कम्यूनिटी थियेटर' द्वारा प्रस्तुत 'दफा 144' तथा 'बुलडोज़ नोटिस' के मंच-मुक्त प्रदर्शनों का उल्लेख भी आवश्यक प्रतीत होता है।

चण्डीगढ़ के 'रवीन्द्र थियेटर' में आयोजित दिल्ली से आयातित नाटकों के प्रदर्शनों का भी नगर के रंगकर्म पर सीधा प्रभाव पड़ा। इस समारोह में 'दिल्ली नाट्य थियेटर' द्वारा शीला भाटिया के निर्देशन में प्रस्तुत 'नादिर शाह,' 'लिटिल थियेटर ग्रुप' द्वारा बलराज पंडित तथा बृज मोहन शाह के निर्देशन में प्रस्तुत 'कफन' एवं 'मशरिकी हूर' के अतिरिक्त राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, रंगमण्डल द्वारा रंजीत कपूर निर्देशित 'बेगम का तकिया,' उत्तरा बावकर निर्देशित 'संध्या छाया' तथा अमाल अल्लाना निर्देशित 'आधे अधूरे' के प्रदर्शन हुए। इन दिल्ली के बहुचर्चित प्रदर्शनों ने चण्डीगढ़ के प्रबुद्ध रंगकर्मियों में तीखी प्रतिक्रियाएं उत्पन्न करके उनकी रचनाशीलता को नई चुनौती देकर प्रेरित किया। 1977 में ही 'सत्य श्री स्टेज आर्टस,' (पंचकुला) द्वारा अनमोल भूषण निर्देशित, बादल सरकार के नाटक 'राम श्याम जदु' को रवीन्द्र थियेटर में प्रस्तुत किया गया। 'कला दर्पण' की ओर से एच. एस. दिलगीर के निर्देशन में 'घरोंदा' तथा 'मांग का सिंदूर' के अभिमंचन भी इसी बीच हुए।

चण्डीगढ़ की इन विविधतापूर्ण तथा बिखरी-बिखरी रंग-गतिविधियों के बीच 'भारतीय रंगमंच विभाग' के अलावा 'अभिनेत' नामक एक नाट्य-संस्था और है जिसने अपने गम्भीर, जागरूक, प्रतिबद्ध और सतत रंगकर्म के द्वारा पिछले दस वर्षों में पंजाब के हिन्दी रगमंच में अपनी केन्द्रिय एवं महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। 'अभिनेत' की स्थापना 1974 में मोहन राकेश के नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' के प्रदर्शन से हुई। सर्वश्री एन. सी. ठाकुर, वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता, श्याम सुन्दर डाबरा, श्रीमती सुरिन्दर पाल कौर, बी. पी. सिन्हा, श्रीमती चम्पा मंगतराय, आदित्य प्रकाश, हरीश भाटिया और अतुलवीर अरोड़ा जैसे सुशिक्षित तथा प्रबुद्ध संस्थापक सदस्यों ने मिलकर 'हिन्दी के प्रामाणिक रंगमंच की तलाश करने, चण्डीगढ़ के रंगकर्म की अलग पहचान बनाने और नाट्य-जगत की प्रायः सभी समस्याओं से शास्त्रीय और व्यावहारिक स्तर पर जूझने के इरादे से इस संस्था को जन्म दिया। डॉ. अतुलवीर अरोड़ा के अनुसार, "नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा की जो प्रस्तुतियां



कुंती (शीतल शर्मा) और पुरोहित 'एक प्रश्न मृत्यु' के एक दृश्य में

चण्डीगढ़ में देखने को मिलती थीं, उन्हें देखने के बाद एक तरह की हीन-भावना का प्रसार यहां के नाट्य कर्मियों के जहन में फलित हो रहा था। चकाचौंध और भारी भरकम साज-सज्जा के विराट और भव्य रूप यहां के नाट्य-कर्म के लिए घातक सिद्ध हो रहे थे। आर्थिक स्तर पर गरीब लेकिन उत्साही रंग-कर्मी एक अजीब कुण्ठा के शिकार हो रहे थे। ऐसी स्थिति में रंगकर्मी-सम्बद्धता और नाटक के प्रति अपनी ईमानदारी और दायित्व-भावना से भरे हुए 'अभिनेत' के संस्थापक-सदस्यों ने हिन्दी और हिन्दी में अनूदित दूसरी भाषाओं के समर्थ नाटकों का सादा और गंभीर मंचन आरम्भ किया।"

'अभिनेत' के स्तरीय प्रदर्शनों ने पिछले दस वर्षों में चण्डीगढ़ में गम्भीर रंगकर्म की एक स्वस्थ परम्परा तैयार की है। दो-ढाई सौ की दर्शक संख्या से लेकर लगभग आठ-नौ सौ प्रबुद्ध दर्शकों की संख्या तैयार करने में इस संस्था का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस बीच 'अभिनेत'ने 'आषाढ़का एक दिन' 'सुनो जनमेजय' तथा 'अंत नहीं' प्रो. एन. सी. ठाकुर के निर्देशन में, 'लहरों के राजहंस,' 'मरणोपरांत', डॉ. मेंहदीरत्ता के निर्देशन में, 'एवं इन्द्रजित', 'हुं', 'आठवां सर्ग', 'सारी रात', 'पैर तले की जमीन', 'कांचघर' ठॉ. अतुलवीर अरोड़ा के निर्देशन में तथा 'शायद', 'दुलारी बाई', 'आला अफसर', 'मुद्राराक्षस' और 'आधे अधूरे' को हरीश भाटिया के निर्देशन में अभिमंचित किया। दस वर्षों में चौबीस श्रेष्ठ नाटकों के स्तरीय प्रस्तुती-करण अपने आप में एक उल्लेखनीय प्रतिमान है। हाल ही में 'अभिनेत' ने अपनी दसवीं साल गिरह के अवसर पर अपने तीन नाटकों का एक समारोह आयोजित किया था, जिसमें मोहन राकेश के 'आधे अधूरे', सैमुअल बैकेट के 'एंड गेम' तथा डॉ.

(शेष पृष्ठ 57 पर)

थके हारे

□ पृथ्वीराज मोंगा



साढ़े नौ बजते-बजते कुर्सी पर रखे ब्रीफकेस को उठाकर चिरंजीत आफिस जाने के लिए सीढ़ियां उतर चला। नीचे पहुंच कर गेट खोलने के लिए हाथ बढ़ाया ही था कि फर्श पर एक अंतर्देशीय पत्र पड़ा दिखाई दिया। गेट खोलने की बजाय झुककर पत्र को उठाने लगा। पत्र को उठाते-उठाते लिखावट से जान लिया कि पत्र गांव से छोटे भाई अमर ने लिखा है। ब्रीफकेस नीचे रखकर वह जल्दी-जल्दी पत्र खोलने लगा। हालांकि पिताजी की पहुंच के पत्र का इंतज़ार उसे पिछले एक महीने से था, फिर भी पता नहीं क्यों, पत्र खोलते समय दिल एकाएक धक् से रह गया, हलक सूख गया, हाथ कांपने लगे।

पत्र खोला। गिनी-गिनाई दस पंक्तियां थीं। वह जल्दी-जल्दी पढ़ने लगा। पहली ही पंक्ति पढ़ी तो महसूस हुआ जैसे अपने ही ध्यान में बैठे की छाती में किसी ने जोर से लात दे मारी है। जैसे-तैसे अपने पर काबू रखने की कोशिश करते हुए बाकी का पत्र भी पढ़ गया। लगा, पढ़ने में जरूर कहीं भूल हुई है। इस बार वह अधिक सतर्कता से पढ़ने लगा:

भाई साहब,

पिताजी का स्वर्गवास हुए आज तीसरा दिन है। वे नहीं चाहते थे कि उनके स्वर्गवास की सूचना आपको तुरंत दी जाये क्योंकि इससे आपको असुविधा हो सकती है।

मरने से पहले वे जमीन-जायदाद के हिस्से कर गये हैं। अपना हिस्सा लेने के लिए जब भी आना चाहें, आ जायें।

पढ़-लिख जाने और बड़ा रुतबा पा लेने से खून क्या इतना सफेद हो जाता है? आप लोगों ने जो कुछ भी किया, अच्छा नहीं किया।

—अमर

आंखों के सामने न जाने कितने ही दृश्य आ-आकर गड्ड-मड्ड होने लगे—होते रहे···पिताजी·· सत्तर वर्ष से ऊपर उम्र ···सिर में जूएं···बदन पर पोर-पोर मैल·· आंखों के कोनों में कीच···चिलमची के बाहर फर्श पर बलगम, मक्खियां·· नथुने फुलाये खड़ी, खीझती, बोलती, घूरती पत्नी सुधा·· खामोश वह ·· असहमत भी···अनिश्चित सा·· विवश सा···

उसने नीचे झुककर ब्रीफकेस उठाया और वापस ऊपर जाने के लिए सीढ़ियां चढ़ने लगा—एक·· दो·· तीन···। एक-एक सीढ़ी को तय करने में उसे शरीर की पूरी शक्ति लगानी पड़ रही थी। जी चाह रहा था कि ऊपर जाने की बजाय कहीं दूर, बहुत दूर चला जाये और वहां जाकर अपने इस···इस जलील अंदर-बाहर पर मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगा ले। वह बड़बड़ाने लगा—"नहीं·· नहीं·· वह सब·· नहीं·· बाद में कितना पछताया था···पर बाद में·· वक्त निकल जाने के बाद···।"

ऊपर पहुंच कर कमरे में घुसा तो सुधा उसे देखते ही अवाक् रह गयी। नाश्ते की प्लेट सेंटर टेबल पर रखकर एकदम से उठ खड़ी हुई। जब वह काफी देर तक बुत बना उसी तरह खड़ा रहा तो सुधा घबराये स्वर में पूछने लगी—"क्या हुआ जी··· चिट्ठी कहां से आयी है···बोलिए न·· क्या हुआ··?"

उसने दायें हाथ में झूलते ब्रीफकेस को नीचे रखा और अपनी जलती हुई आंखें सुधा की आंखों में डाल दीं। सुधा का रंग पीला पड़ने लगा—"बोलते क्यों नहीं·· क्या बात है···?"

इस बार उसका दायां हाथ जोर से हवा में लहराया और अगले ही क्षण भरपूर थप्पड़ बनकर सुधा के गाल पर पड़ने की बजाय एक तरफ को बेजान-सा झूल गया। सुधा डरकर दो कदम पीछे हट चुकी थी। वह कुछ देर और उसी तरह बिना हिले-डुले खड़ा रहा, फिर हाथ आगे बढ़ाकर पत्र सुधा को पकड़ा दिया।

सुधा ने पत्र पढ़कर क्षणभर के लिए उसकी तरफ देखा, फिर पलंग पर बैठकर रोने लगी। वह भी वहां से हटा और दायें हाथ वाली दीवार के साथ रखी कुर्सी में धंस गया। महसूस हुआ, जैसे वह कुर्सी में नहीं बल्कि गहरी लंबी रात में किसी दलदली तालाब में फंस गया है···और लगातार नीचे·· और नीचे धंसता जा रहा है·· न कोई सुनने वाला है, न कोई बचाने वाला···

उसने हाथ बढ़ाकर टेबल से सिगरेट का पैकेट उठाया और एक सिगरेट सुलगाते हुए आंखें बंद करके सिर को पीछे दीवार के साथ टिका दिया। होंठ अनायास ही कुछ-कुछ बड़बड़ाने लगे —"नहीं · गांव से पिताजी को लाना ही नहीं चाहिए था···न वे यहां आते···न ढाई महीने यहां रहते···और न···पर·· पर ···बूढ़े मां—बाप तो बेटों के यहां रहते ही आये हैं···मैंने तो चाहा था कि दिल्ली लाकर पिताजी की सेवा करूंगा··और सुधा ··उसने भी तो गांव जाकर पिताजी को कई—कई बार दिल्ली चलने को कहा था···उधर पिताजी भी थोड़ा चेंज चाहते थे शायद···फौरन तैयार हो गये···और यहां···इतना कुछ हुआ ···होता रहा···और मैं मूक दर्शक बना उस सबको देखता रहा ···देखता ही रहा···सचमुच मेरा खून सफेद हो चुका है···अमर ने ठीक ही लिखा है···बिल्कुल सच लिखा है···"

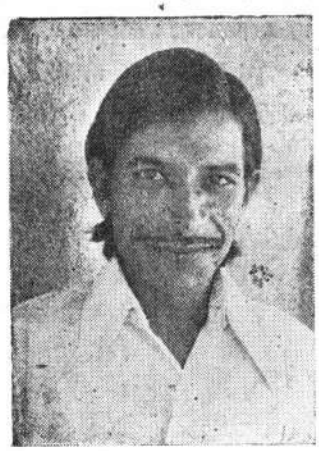
"सुनिए !" सुधा बिस्तर से उठकर उसके सामने आ खड़ी हुई थी।

होठों की बड़बड़ाहट के रूप में मुखरित होता आत्मप्रलाप रुक गया। आंखें खोलकर देखा तो सुधा बोली—"चलना नहीं है ? ग्यारा तो कब के बज चुके। अब भी निकलें तो शाम सात बजे तक मुश्किल से पहुंचेंगे।"

वह दयनीय हो आया। दोनों हाथ जोड़कर डूबते स्वर में अनुनय-विनय की—"थोड़ी देर मुझे चुपचाप बैठा रहने दो··· प्लीज·· प्लीज···।"

सुधा वहां से हटी और वापस जाकर इस बार पलंग पर मुंह दीवार की तरफ करके लेट गई। उसने जुड़े हुए हाथों को अलग किया और फिर उन्हीं प्राणहीन हाथों से सेंटर टेबल पर रखे सिगरेट के पैकेट को उठाकर एक और सिगरेट सुलगा ली। सिर को दुबारा से पीछे, दीवार के साथ टिकाया और आंखें बंद कर लीं।

बचपन का एक वही दृश्य जो विस्मृति के घुन से जैसे-तैसे बच रहा था, आंखों के सम्मुख आ खड़ा हुआ। सफेद रंग की ऊंची-तगड़ी घोड़ी गांव से खेतों की तरफ सरपट भागी जा रही है। पूरा रास्ता धूल-धूल हो रहा है। पिताजी घोड़ी को और तेज भगाने के लिए मुंह से "हो·· हो·· हो" शब्द का उच्चारण करते हुए लगाम को झटके दे रहे हैं। वह पीछे बैठा पिताजी को कसकर पकड़े हुए है। हर पल, हर क्षण लगता है कि बस अब गिरा कि गिरा···।



परिचय : पृथ्वीराज मोंगा

जन्म : अविभाजित पंजाब के एक गांव में 1950 के आसपास। बड़ा हुआ तो परिवार शहर में आ बसा। और फिर रोजी-रोटी के चक्कर में आया इसी दिल्ली में। गांव में घरों के दरवाजे नहीं होते थे। शहर में दरवाजे तो होते थे, लेकिन वे खुले रहते थे। यहां, दिल्ली में, लोग सिर्फ खिड़कियां खोलते हैं, दरवाजे नहीं। गांव से महानगर के बीच की इस यात्रा में मिले लोग ही मेरी कहानियों के केन्द्र बिन्दु होते हैं।

अब तक दो कहानी संग्रह और उपन्यास प्रकाशित। कहानी योजना का प्रथम पुरस्कार। भाषा विभाग, हरियाणा द्वारा दो बार सम्मानित एवं पुरस्कृत।

पूरे गांव में उनका दबदबा था। पिताजी सब मिलाकर चार भाई थे और चारों के चारों पूरे सरकारी सांड। बहन सबसे छोटी थी, जिसका विवाह छोटी उम्र में ही करके सिर का बोझ उतार दिया था। कुंए वाले राजपूत उनके रौब-दाब से जले बैठे थे और होली के दिन दोनों परिवार भिड़ गये। परिणाम—कुएं वालों के दोनों बेटे मारे गये और जल्दी ही गांव क्या, जिला तक छोड़कर चले गये। इधर इस परिवार के सबसे छोटे वाले को फांसी और पिताजी को सात बरस की कैद।

पिताजी जेल से लौटे तो अमर नौ का हो चुका था और वह ग्यारह का। सबसे बड़ी बिमला की शादी पिताजी के जेल में रहते ही ताया-चाचा ने खूब धूम-धाम से कर दी थी···

'सी ssss", अचानक होंठों से सिसकारी निकली और

उंगलियों में फंसा सिगरेट का टुकड़ा छूटकर फर्श पर जा गिरा उसने बैठे-बैठे पांव आगे बढ़ाकर टुकड़े को वहीं मसलकर नयी सिगरेट सुलगा ली।

सामने देखा, सुधा अभी तक उसकी तरफ पीठ किए लेटी थी। थोड़ी देर बाद नज़र तैरती हुई दरवाजे के पास वाली शीशे की खिड़की पर टिक गयी। यहीं···इसी खिड़की के नीचे पिताजी की चारपाई बिछाई गयी थी और जाने के दिन तक वे यहीं सोते रहे। सुधा के सेवाभाव का नशा पांचवें-छटे दिन उतरना शुरू हो गया था जब एक शाम पिताजी अपने झोले से जुओं वाली कंघी निकाल कर सिर में फेरने लगे थे। थोड़ी देर कंघी चलाने के बाद पिताजी ने कंघी हाथ में पकड़ते हुए उसे पुकारा था—"पुत्तर जरा आके वेखने सही।"

तभी सुधा चाय की ट्रे लेकर अंदर आ गयी। इस बार पिताजी ने उसकी बजाय सुधा को पुकारना मुनासिब समझा—"सिर में बड़ी खुरक हो रही है। आके देखना बेटी ज़रा।"

सुधा आगे बढ़ी तो सही पर उसके चेहरे से स्पष्ट था कि यह बात उसे काफी अरुचिकर लगी है। और जब कंघी को हाथ में लेकर देखा तो सुधा के पूरे बदन में एक झुरझुरी सी उठी थी—यह उसने खुद अपनी आंखों से देखा था। सुधा ने कंघी लाकर उसके सामने कर दी। सफेद रंग की कम से कम सात-आठ बड़ी-बड़ी जुएं कंघी के दांतों में फंसी बिलबिला रही थीं। उसका जी एकदम कच्चा हो गया।

इतने में विनोद हाथ में पकड़ी पुस्तक को सैंटर टेबल पर रखते हुए उठ खड़ा हुआ। अपनी मां के हाथ में पकड़ी कंघी को ध्यान से देखने पर लगभग चिल्ला-सा पड़ा—"माई गाड! बाबा तो हमें भी जुएं डाल देंगे।" इतना कहकर विनोद ने चाय का अपना मग्गा उठाया और बाहर खुली छत पर जाकर पीने लगा।

सुधा कंघी लेकर बाथरूम की तरफ निकल गयी। उसने उठकर चाय का मग्गा पिताजी को पकड़ाया तो उन्होंने पूछा—"कोई थी क्या? खुरक तो सिर में इतनी है कि रात भर खुजलाता रहता हूं।"

सुनते ही उसका जी एकाएक फिर से मिचलाने लगा। फिर भी जी कड़ा करके कहा—"बड़ी-बड़ी सात-आठ जूएं थीं। अच्छा अब चाय पीजिए।" वह चाहता था कि अब पिताजी जूओं के विषय को और लंबा न खींचें, इसीलिए कह भी दिया कि अच्छा अब चाय पीजिए।

लेकिन पिताजी चाय के छोटे-छोटे घूंट लेते हुए बोलने लगे—"मैं भी कहूं, इतनी खुरक क्यूं छिड़ गयी। मतलब कि और भी होगी। अगर ये नामुराद जूएं पड़ जायें तो फिर आसानी से पीछा नहीं छोड़तीं। मैं जब पाकिस्तान में जेल में था तो बदन में जूएं पड़ गयी थीं। सारी-सारी रात सो नहीं पाता था। सफेद रंग की बड़ी-बड़ी जूएं थी·· और बड़ी बात तो यह···।" पिताजी बोलते रहे, साथ-साथ चाय पीते रहे। उसने भी अपना मग्गा उठाया और बेमन से बड़े-बड़े घूंट लेने लगा। हर घूंट पर लगता कि उसने एकाध जूं निगल ली है और वह गले में फंस गयी है।

सुधा अंदर आयी और कंघी को पिताजी के पास रखते हुए अपनी चाय उठाकर रसोई में ले गयी।

रात फिर वही हुआ। खाना अंदर आने में अभी थोड़ी देर थी कि अचानक पिताजी जल्दी से उठकर बैठ गये जैसे एकाएक कोई भूली हुई बात याद आ गयी हो। बैठकर थोड़ी देर उंगलियों से सिर को खुजलाते रहे, फिर तकिए के नीचे से कंघी निकाल कर फेरने लगे···"इकदम फिर से बड़ी खुरक छिड़ गयी है।"

सुधा किसी काम से अंदर आयी और पिताजी को फिर से कंघी फेरते देख खीझ पड़ी—"पिताजी, अगर आप थोड़ा सा ध्यान नहाने पर देते तो यह नौबत ही न आती। इतनी मैल चढ़ी हुई है बदन पर, फिर भी आप नहाने का नाम नहीं लेते। खाने-पीने के टाइम तो कम से कम आप जूएं न निकाला करें। हमारा जी कच्चा होता है।"

पिताजी ने धीरे से थूक निगला और कंघी को तकिए के नीचे रखते हुए बोले—"हच्छा पुत्तर।"

वह न चाहते भी खामोश बैठा रहा। नहीं, सुधा को ऐसे कठोर शब्दों का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए था। यही बात तमीज़ से भी तो कही जा सकती थी। लेकिन वह बात को और बढ़ाना नहीं चाहता था, इसलिए मन ही मन कुढ़ता चुप बना रहा···

सामने देखा। सुधा अभी भी उसी तरह पीठ फेरे लेटी थी। उसने उंगलियों में फंसी सिगरेट के दो-तीन कश खींचे और तब बचे हुए टुकड़े को नीचे फर्श पर फैंक दिया। टुकड़े से धूएं की टेढ़ी-मेढ़ी लकीर ऊपर उठने लगी। वह ऊपर उठते हुए धुएं में नजर गड़ाये पता नहीं क्या-क्या सोचता रहा। तभी एकाएक बिजली की तरह एक दृश्य मस्तिष्क में कौंध गया और कहीं बहुत दूर से पिताजी का बलगमी रुदन सुनाई देने लगा।···तब पिताजी को दिल्ली आये मुश्किल से बीस दिन हुए थे। उस रात जब पिताजी और वह खाना खा चुके थे तो उसने एक सिगरेट खुद सुलगाई और दूसरी पिता जी को पेश की। पिताजी ने सिगरेट लेकर तकिए के नीचे रख दी और स्वयं कराहते हुए लेट गये—"हा sss य।"

"क्या बात है पिताजी, सिगरेट नहीं लगाई। तबीयत तो ठीक है न! खाने के बाद तो आप पीते हैं।"

"नई, वो बात नहीं। सुधा का दिल खराब होता है खांसने से। रोटी खा ले सुधा पहले, फिर पी लूंगा। थका-हारा बुढ़ापा

जो हुआ—खांसी बलगम हो तो अब संगी-साथी हैं।" पिताजी का स्वर रुआंसा हो आया।

सिगरेट पीने वाले को खाने के बाद अगर तुरंत सिगरेट न मिले तो खाने का आधा जायका जाता रहता है। और ऐसे में···लेकिन वह कुछ कह न सका। सुधा और विनोद दोनों बैठे खाना खा रहे थे। ऐसे में बात को खींचना···लेकिन··· लेकिन···

"किस वक्त जाना है ?"

वह दहल गया—जैसे आत्म केन्द्रित होकर बैठे व्यक्ति के कान के पास मुंह ले जाकर कोई जोर से चिल्लाया हो। घबरायी हुई आंखें सामने, सुधा पर टिका दीं। सुधा ने फिर से कहा—"बोलते नहीं, किस वक्त जाना है ?"

हमेशा की तरह वह कुछ बहुत सख्त कहता-कहता रुक गया। बोला—"जब जाना होगा बता दूंगा। तुम रेस्ट करो तब तक।"

सुधा अगले ही क्षण पूर्ववत हो रही। बीते हुए दिनों के घटनाचक्र ने उसे फिर से बालों से पकड़ लिया। महसूस हुआ, अगर समय-समय पर मन में आया सख्त सा कुछ कहता रहता तो अब···। और तो और वह उस दिन भी सब कुछ को मन ही मन में दबा गया था, जबकि चाहिए यह था कि·· उस शाम जब वह आफिस से लौटा तो घर में कुहराम मचने के पूरे-पूरे आसार थे···। पिताजी लेटे-लेटे गर्म पानी की बोतल से अपने कूल्हे पर सेंक कर रहे थे। पूछा—"क्या हुआ पिताजी ?"

सुधा जल्दी से रसोई से निकल कर कमरे में आ गयी—"पिताजी थोड़ी देर पहले बाथरूम में फिसल पड़े थे। कहा कि डाक्टर को बुला लाती हूं, पर पिताजी माने ही नहीं। गर्म पानी कर दिया है। टकोर कर रहे हैं।"

जी चाहा कि सुधा पर चीख पड़े—"तुम उस वक्त कौन-सा जरूरी काम कर रही थी जो पिताजी को बाथरूम तक छोड़ने नहीं जा सकी ? पर तुम्हें रेलिंग पर झुककर पड़ोसिनों से गप्पें मारने से फुरसत मिले, तब न ! लानत है।" लेकिन वह कुछ नहीं बोला था। काश ! वह उसी दिन फट पड़ता···

उसी तरह बैठे-बैठे हाथ बढ़ाकर सेंटर टेबल से सिगरेट का पैकेट उठाया और एक नयी सिगरेट सुलगा ली। दृश्यों का लंबा काफिला बंद आंखों के सामने एक क्षण के लिए विश्राम पा फिर से चल पड़ा···चलता ही रहा···

···पिताजी ने रात को पांचवीं बार पेशाब जाने के लिए पुकारा है—"पुत्तर जरा बत्ती जलाना।" सुधा ने अस्पष्ट-सा कुछ बड़बड़ाते हुए उठकर बत्ती जला दी और फिर कहा—"कल 25 वाट का बल्ब जरूर ले आइये···रात को कितनी बार उठे इन्सान।" पिताजी जूता घिसा—घिसाकर चलते हुए दरवाजे को खोलने लगे हैं···

···पिताजी रात को आठ-दस बार पेशाब को जाते हैं। 25 वाट का बल्ब जलता रहता है, लेकिन हर बार दरवाजे को इतनी जोर से खोलते और बंद करते हैं कि·· सुधा या विनोद हर बार कुछ न कुछ चुभता-सा कह देते हैं···

·· पिताजी सुबह छह बजे उठकर रजाई में बैठे-बैठे गायत्री का जाप कर रहे हैं। रह-रहकर तीन-चार शब्दों का उच्चारण काफी ऊंचे स्वर में होता है···सुधा कहती हैं—"खा लिया है हमें तो इसने।"

···सुधा खीझ रही है—"मुझसे तो अब और नहीं होने का, हां ! आंखें कीच से भरी रहें, साफ नहीं करेंगे। पांवों की उंगलियों में इतना मैल जमा है, मक्खियों का अंबार लगा रहता है, पर पांव नहीं धोयेंगे। आधा कफ चिलमची से बाहर थूकेंगे। पेशाब जायेंगे तो धोती को यहीं से ऊपर चढ़ाना शुरू कर देंगे··· आसपास वाले खिल्ली उड़ाते हैं·· क्या-क्या कहूं·· मैं तो तंग आ गयी हूं इन दो महीनों में·· आप बस इन्हें वापस भेज दीजिए·· एक कमरा है और इसे इन्होंने पूरा नरक बनाकर रख दिया···।

·· वह शाम को आफिस से लौटा है। पिताजी शायद बाथ रूम में हैं। फिर भी रसोई में खड़ी सुधा से पूछता है—"पिता जी कहां हैं ?" इतना पूछते-पूछते वह खुद ही बाथरूम तक चला जाता है। वहां का दृश्य देखकर वह भीतर तक थर्रा गया है। अंदर पिताजी दरवाजा भिड़ाये बिना, नीचे से बिलकुल नंगे हो टट्टी से लथलथ अपना कच्छा और धोती धो रहे हैं। तब तक सुधा भी रसोई से निकल कर पास आ जाती है—

"आज इन्होंने कपड़ों में ही हग दिया···।"

"इतनी सर्दी है। तुम कम से कम पानी तो गरम करके दे सकती थी।" वह चाहते हुए भी गरज कर नहीं कह पाया ?"

"और तब तक ये इसी तरह गंदे बैठे रहते ?"

सुधा की बात का कोई जवाब न दे वह पिताजी की तरफ देखता है। ठंड से उनके पूरे बदन में कंपकंपी छूट रही है। तभी एकाएक कपड़ों को पानी की बाल्टी में डालते हुए पिताजी की बलगमी रुलाई फूट पड़ती है—"मुझे घर भेज दो। अमर की बड़ी याद आ रही है। मैं अब यहां नहीं रहूंगा···। दो महीने बारां दिन हो चुके हैं·· मुझे कल ही घर भेज दो··।"

उसने एक गहरी ठंडी सांस लेते हुए सिर को एक झटका दिया और सिगरेट के टुकड़े को फर्श पर फेंक कर उठ खड़ा हुआ। उठकर ही लड़खड़ाकर गिरने को हुआ, लेकिन दीवार के ऊपर हाथ टिकाकर जैसे-तैसे संभल गया। थोड़ी देर वहीं खड़ा रह पता नहीं क्या-क्या सोचता रहा। फिर धीमे-धीमे कदमों से आगे बढ़ा और स्टूल पर चढ़कर स्टील की अलमारी के ऊपर रखी अटैची को उतारने लगा।

अटैची उतार कर नीचे रखने में ही वह हांफने लगा।

पूरा शरीर थककर चूर हो गया। शक्ति नाम मात्र को भी नहीं बची थी। अटैची को एक तरफ रखते हुए वह उसी स्टूल पर बैठकर उखड़े हुए सांसों को स्थिर करने लगा। काफी देर तक उसी तरह चुपचाप बैठे रहने के बाद धीरे से उठा और अलमारी खोलकर साथ ले जाने वाले कपड़ों की तलाश करने लगा।

"सुनो!" बहुत भीतर से जैसे कोई अंधा कुआं बोला—"क्या सचमुच जा रहे हो? जा पाओगे वहां? अमर, उसकी पत्नी शांति, बड़ी बहिन बिमला का सामना कर पाओगे? कैसे?" अनुभव हुआ, वह गांव में किसी का भी सामना करने के योग्य नहीं रहा। "फिर···? जाना है क्या?" नहीं·· नहीं ···वह नहीं जा पायेगा···अब कभी भी गांव नहीं जा पायेगा। गया तो घर के किवाड़ तक पिताजी के दुखों का हिसाब मांगेंगे। वह किस-किसको, क्या-क्या जवाब देगा? जवाब में कुछ कहने को है भी क्या···कुछ नहीं···कुछ नहीं···कुछ भी तो नहीं···

तभी एकाएक जोर से चक्कर आया और वह संभलने की भरसक कोशिश के बावजूद लड़खड़ाकर धड़ाम की आवाज के साथ नीचे फर्श पर गिर पड़ा। सुधा हड़बड़ा कर उठी और उसे नीचे पड़ा देख रोने लगी। फिर आगे बढ़ी और बांहों का सहारा देकर उसे उठाने की कोशिश करने लगी। ठीक तभी उसकी आंखों के सामने बाथरूम में नंगे बैठकर ठंडे पानी से धोती-कच्छा धोते पिताजी की आकृति आ खड़ी हुई। अगले ही क्षण वह सुधा की बांहों से छूटा और फर्श पर लेटते हुए दबे स्वर में रोने लगा।

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
ए-5, ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110016

अपनी तलाश में··· (पृष्ठ 45 का शेष)

हैं। उल्लू की नहीं। इसलिए मैंने उल्लू से कहा, "एक बार फिर सोच लो, कहीं तुम्हें गलतफहमी तो नहीं हो रही।"

"अपने बारे में गलतफहमी इन्सानों को होती है उल्लुओं को नहीं।"

"क्या यह तुम्हारा स्थाई निवास है?"

"नहीं आत्मा बेचैन है, खंडहर बदलता रहता हूं। आज इस खंडहर पर कुछ आंसू बहाने आ बैठा हूं। एक दोस्त ने कल कहा "मेरे बेटे की टांग टूट गई है। कुछ रुपये इलाज के लिए दे दो।" शाम को देखा तो उन्हीं रुपयों से वह व्हिस्की पी रहा था।" "उसे शर्मिन्दा कर देते।"

"नहीं, बल्कि मैंने उससे आंखें फेर ली, ताकि वह मुझे देख कर शर्मिन्दा न हो जाए

"तुम सिर्फ उल्लू ही नहीं हो बल्कि कायर भी हो"

"मगर मैंने सोचा, भगवान ने उसे भी तो बुद्धि और भावनाएं दी है। वह स्वयं अपने आपको क्यों न फटकारे। और फिर मुझे एक बड़े आफिसर के पास जाना था, जिसने मेरे कहने पर एक एम. ए. पास नौजवान को नौकरी दिलाने का वादा किया था। फटकारने का मेरे पास टाईम ही कहां था?"

"उसे नौकरी दिला दी?"

"नहीं, उस आफिसर ने रिश्वत लेकर किसी और को दे दी।"

"मगर तुमने क्या किया?"

"इस खंडहर पर आंसू बहाने के लिए आ बैठा

हा-हा-हा"

प्रिय पाठको—इसके बाद मैं घर लौट आया। मैं अपनी खोज में आप ही बिखर गया था। इस बिखराव में दुनिया की हर चीज़ बिखर गई थी। मैंने दुनिया का बिखराव ढूंढ लिया था। जिससे मुझे ज्ञात हुआ कि मैं उल्लू हूं। मैंने भगवान को भी ढूंढ लिया था—वह भी उल्लू है। यह बिखराव ऐसा है कि दुनिया की हर चीज में कोई न कोई उल्लू जरूर है। चाहे वह कोई लीडर हो, लीडर पर गंदे अण्डे फैंकने वाला हो, अधनंगा छोकरा, ब्रह्म कुमारियों की तरफ भागने वाली धोबिन, बोझ ढोने वाला गधा, डण्डे मारने वाला मालिक...आप उन सबको उल्लू कह दें—या फिक्र तौंसवी कह दें ..भगवान कह दें...कोई फर्क नहीं पड़ता।

डी.-50 गुलमोहर पार्क, नई दिल्ली-110046,

(पृष्ठ 52 का शेष)

विनय के अप्रकाशित नए काव्य-नाटक 'एक प्रश्न मृत्यु' के सराहनीय प्रदर्शन किए गये।

स्वस्थ और सार्थक रंगकर्म के लिए प्रतिबद्ध 'अभिनेत' ने चण्डीगढ़ के विभिन्न कलाकारों और जागरूक नाट्य-दलों के बीच एक अर्थपूर्ण सम्वाद स्थापित करने का महत्वपूर्ण कार्य भी किया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पंजाब के हिन्दी रंगमंच और उसकी वैविध्यपूर्ण गतिविधियों की कोई खास जानकारी भले ही उस विशिष्ट शहर या प्रदेश से बाहर तक न जा रही हो और भले ही दिल्ली और भोपाल या कहीं अन्यत्र हुए उनके प्रदर्शनों ने कोई खास खलबली न मचाई हो परन्तु यह भी सच है कि पंजाब का समकालीन हिन्दी रंगमंच आधुनिक भारतीय रंगमंच की मुख्य धारा से जुड़ने और अपनी राष्ट्रीय स्तर की छवि बनाने के लिये निरन्तर संघर्षरत है। उसके इस रचनात्मक संघर्ष और ईमानदार प्रयत्न का मूल्य एवं महत्व किसी भी दृष्टि से कम नहीं है। मोहन राकेश, अश्क और भीष्म साहनी जैसे नाटककार तथा बलराज साहनी, पृथ्वी राज कपूर, ओमपुरी, राज बब्बर और किरण ठाकुर सिंह जैसे मंच कलाकार हमें पंजाब से ही मिले हैं।

निल 69 ए, मालवीय नगर, नई दिल्ली-110017

आदि ग्रंथ–दिव्य प्रेम का काव्य

□ लोचन सिंह बख्शी

पवित्र ग्रन्थ 'गुरु ग्रन्थ साहिब' का संकलन पांचवें गुरू, गुरू अर्जुन देव ने किया था। सिक्खों के लिए इस महान ग्रन्थ का वही महत्व है जो बाइबिल का ईसाइयों के लिए हैं, 'पवित्र कुरान' का मुसलमानों के लिए तथा वेदों का हिन्दुओं के लिए है। इसमें भक्ति भाव से भरे 5,894 पद हैं जिन्हें पंजाबी भाषा में गुरबानी कहते हैं। 'गुरबानी' का शाब्दिक अर्थ गुरु की उक्तियां हैं। इस महान ग्रन्थ में 1430 पृष्ठ हैं।

वस्तुत : इस पवित्र ग्रन्थ में न केवल सिक्ख गुरुओं की उक्तियों का ही संकलन है वरन् इसमें भारतीय सन्तों एवं सूफियों के भक्ति से भरे गीत भी शामिल हैं। इस प्रकार 'गुरु ग्रन्थ साहिब', जाति, वंश, सम्प्रदाय तथा धर्म की संकुचित सीमाओं से परे एक अनूठा संग्रह है। प्रत्येक सिक्ख इसकी पूजा करता है तथा इसके पदों का पाठ करते समय यह नहीं सोचता है कि यह किसी सिक्ख गुरु द्वारा रचित है अथवा किसी ऐसे अन्य व्यक्ति द्वारा जो कभी अस्पृश्य था। इस संग्रह में हिन्दू सन्त, मुसलमान सूफी, विद्वान ब्राह्मण तथा दलित शुद्र सभी को बराबर स्थान मिला है। भक्तों के लिए पवित्र ग्रन्थ गुरबानी का प्रत्येक शब्द तथा गुरु ग्रन्थ साहिब साक्षात् ईश्वर का रूप है। दसवें गुरु ने 'ज्योती ज्योत समाने' से पूर्व इस पवित्र ग्रन्थ के सामने शीश नवाते हुए नारियल तथा पांच पैसे रखकर यह घोषणा की कि भविष्य में गुरु की शक्तियां इस पवित्र ग्रन्थ में निहित होंगी। इस प्रकार यह पवित्र ग्रन्थ 'गुरु ग्रन्थ साहिब' के नाम से मशहूर हुआ। इसको गुरु जैसे ही सम्मान तथा अधिकार दिए गए।

इस प्रकार सिक्ख जीवन पद्धति में जीवित मानव के रूप में गुरु की परम्परा हमेशा के लिए समाप्त हो गयी। आज सिक्ख इस पवित्र ग्रन्थ के समक्ष पूरे आदर तथा श्रद्धा से सर नवाते हैं तथा अपने घरों एवं मन्दिरों में उसे सम्मान का स्थान देते हैं।

आदि ग्रन्थ के संकलन की कथा बड़ी अद्भुत है। पांचवे गुरु, गुरु अर्जुन देव ने अपने पूर्व के गुरुओं द्वारा रचित बिखरे पदों को संकलित करने का बीड़ा उठाया तथा अपने पदों को भी इसमें जोड़ दिया। कहा जाता है कि पिछले गुरुओं के शत्रुओं ने कविताएं रचनी शुरू की तथा गुरुओं के नाम से उन्हें प्रचारित किया। अत: गुरु अर्जुन देव का यह प्रयत्न था कि गुरबानी का विशुद्ध रूप अक्षुण्ण रखा जा सके।

यह सोलहवीं शताब्दी की शुरूआत का काल था। स्थल था अमृतसर का रामसर मन्दिर। घने पेड़ों के बीच, पवित्र सरोवर के किनारे खुले मैदान में गुरु घटों बैठे पदों का विश्लेषण करते। उन्होंने एक विद्वान सिक्ख, भाई वरूदास जो स्वयं एक कवि थे, से पदों को लिखने में सहायता करने का आग्रह किया। गुरु स्वयं मूल लिपि को देखते तथा भाई गुरुदास को लिखवाते। यह आदि ग्रन्थ की रचना की शुरूआत थी।

यह बात दूर-दूर तक फैल गई। इस बात को सुनकर कि गुरु ने भक्ति-गीतों के संकलन का महान कार्य शुरू किया है, देश के विभिन्न भागों से लोग अपने हाथों में पुराने जीर्ण भोजपत्र लिए गुरू के पास जमा होने लगे। वे लोग आए और अपनी बहुमूल्य धरोहर को इस आशा के साथ गुरु को सौंपा कि भावी पीढ़ियों की इस पुस्तक में उनके द्वारा लायी गई कृतियों को भी स्थान मिल जायेगा। मैदान हमेशा विभिन्न समुदाय के कवियों विद्वानों, संतों, फकीरों आदि से भरा रहता था। उनमें से कुछ पेशेवर चारणों तथा भाटों ने पारम्परिक शैली में सवैय्या की रचना की। स्वयं एक ख्याति प्राप्त कवि होने के कारण गुरु काफी सोच विचार कर पदों को चुनते थे। उन्होंने कवियों की रचनाओं को नम्रता से अस्वीकृत कर दिया क्योंकि वे पहले गुरु, गुरु नानक देव के विचारों के अनुरूप नहीं थे।

आदि ग्रंथ आज के धर्मनिरपेक्ष समाज में विभिन्न मतावलम्बियों के सहअस्तित्व हेतु एक आह्वान है·· गुरबानी में शांति, शाश्वत भाई-चारा, विश्व बंधुत्व तथा सहिष्णुता का संदेश है ··

गुरु अर्जुन देव की इस धारणा से बड़ी हलचल मची। उन दिनों प्रचलित धारणाओं के मुताबिक तथाकथित अस्पृश्यों अथवा मुसलमानों की वाणी सुनना परम्परावादी हिन्दुओं की दृष्टि में पाप माना जाता था। लेकिन गुरु की दृष्टि उदार तथा गैर परम्परावादी थी। अत: तत्कालीन विचारधारा में क्रांति आ गई तथा आदि ग्रन्थ की निष्पक्षता की नींव पड़ी।

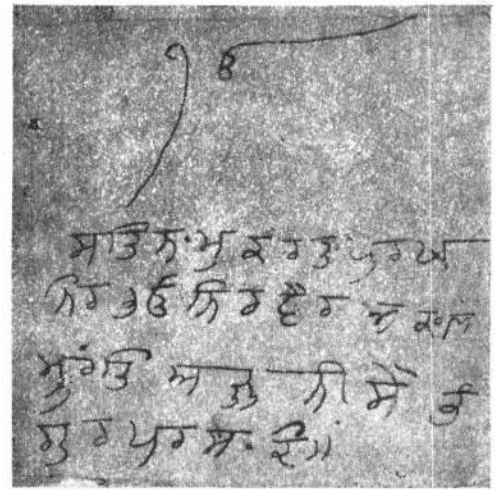
यद्यपि आदि ग्रन्थ का अधिकांश भाग सिक्ख गुरुओं की वाणी से भरा है लेकिन इसमें जीवन के सभी क्षेत्रों से आये समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले भक्तों, सन्तों तथा फकीरों की रचनाएं शामिल हैं। आदि ग्रन्थ में गुरु नामदेव

के 61 पद शामिल हैं। 'गीत गोविन्द' के प्रसिद्ध लेखक जयदेव के भी दो पद इसमें शामिल हैं। इसमें भक्त त्रिलोचन के चार पद, ब्राह्मण परमानन्द का एक पद तथा सिन्ध के एक ईसाई साधना का एक पद तथा जातिवाद के प्रबल विरोधी रामानन्द के पदों को शामिल किया गया है। इसमें रामानन्द के एक शिष्य पीपा का भी एक पद है। वेनी भक्त के तीन पद एवं राजस्थान के धन्ना जाट के चार पद इसमें शामिल हैं। आदि ग्रन्थ में भक्त रविदास के 40 पद शामिल हैं। एक हिन्दू नाई, सेन की भी एक कविता इसमें शामिल की गई है।

इस ग्रन्थ में कबीर के 541 पद शामिल किए गए हैं। इसका कारण यह था कि जाति प्रथा, अस्पृश्यता तथा पाखंडी रीति-रिवाजों के सम्बन्ध में उनकी विचारधारा गुरु नानक से बहुत मिलती थी। उन्होंने ऐसी बातों की निन्दा की। एक सूफी कवि बाबा फरीद के चार पद तथा 130 श्लोक इस ग्रन्थ में शामिल किए गए। भीखन, सूरदास तथा गुरु नानक के जीवन पर्यन्त साथी मरदाना ने भी इस ग्रन्थ की रचना में योगदान दिया है।

महान गुरुओं की प्रशंसा में 'स्वयं' लिखने वाले कुछ भाटों की रचनाएं भी इस ग्रन्थ में गुरुओं के साथ शामिल की गई है। इतिहासकारों के अनुसार आदि ग्रन्थ का संकलन सम्वत् 1661 (1604 ई.) के भादो माह की वदी एक तिथि को पूरा हो चुका था। एक पक्ष की समाप्ति पर इसी महीने की सुदी एक को इसे बड़ी धूम-धाम से अमृतसर के स्वर्ण मंदिर में स्थापित किया गया। यह पवित्र ग्रन्थ एक बहुमूल्य पुण्य स्मृति चिह्न के रूप में करतारपुर साहब में आज तक सुरक्षित है। यह उल्लेखनीय है कि नौवें गुरु के कुछ पद तथा दसवें गुरु का एकमात्र पद इस पवित्र ग्रन्थ में बाद में गुरु गोविन्द सिंह के निर्देशन में शामिल किया गया।

आदि ग्रन्थ के संकलन में, काल के हिसाब से पहले कवि जयदेव (1170 ई.) थे। उनके बाद प्रसिद्ध सूफी कवि बाबा फरीद (1173 ई.) का नाम आता है, जो पंजाबी भाषा के पहले कवि माने जाते हैं। नवें गुरु जिनकी वाणी इस पवित्र ग्रन्थ के अन्तिम भाग में शामिल की गई है, वर्ष 1675 में शहीद हो गए। इस प्रकार यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि यह ग्रन्थ पांच शताब्दियों की धार्मिक विचारधारा का एक अनुपम भंडार है। वास्तव में यह ग्रन्थ अपने ढंग का अकेला दस्तावेज है जो शताब्दियों से चली आ रही भारतीय जनता की मूलभूत भावनात्मक एकता का साक्षी है। जन-जन की भाषा में लिखित यह पुस्तक धार्मिक कट्टरता के उस युग के विभिन्न मतावलम्बियों के सह-अस्तित्व का प्रमाण है। गुरु ग्रन्थ साहिब का यह पहलू इसे आधुनिक समय में और अधिक सार्थकता प्रदान करता है तथा कलह में डूबी मानवता को शन्तिपूर्ण सहअस्तित्व की राह दिखाता है। गुरबानी शाश्वत शान्ति, भ्रातृत्व विश्वबंधुतत्व तथा सहिष्णुता का संदेश देती है। जाति एवं रंग के पूर्वाग्रह से मुक्त शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की यह एक संहिता है।



गुरु अर्जुनदेव द्वारा हस्तलिखित आदि ग्रन्थ का नमूना

इस पवित्र ग्रन्थ के अन्त में आदि ग्रन्थ के संकलन का उद्देश्य गुरु अर्जुन देव के शब्दों में 'मुन्दवाणी' शीर्षक के अन्तर्गत दिया गया है। इसमें यह उल्लेख है कि

'थाली में तीन चीजें रखी हैं—
सत्य, सन्तोष तथा ज्ञान। ये
ईश्वर के नाम से जुड़ी हुई हैं।
जो भी इन्हें ग्रहण करता है वह
मुक्ति को प्राप्त होता है।'

पांचवें गुरु का उद्देश्य कलह से ग्रस्त मानवता को शान्ति प्रदान करता था। पूरन सिंह के शब्दों में "यह सभी राष्ट्रों का एक ग्रन्थ है क्योंकि यह दिव्य प्रेम का एक काव्य है।"

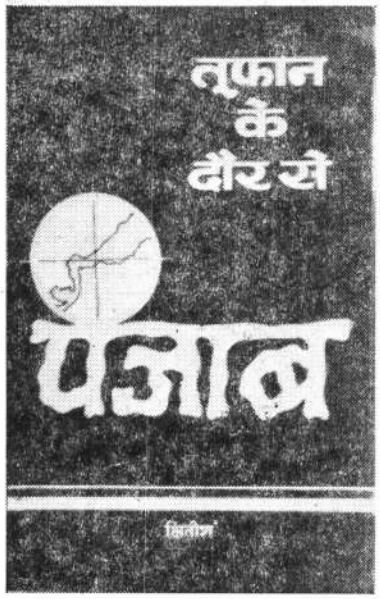
इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि आदि ग्रन्थ की भाषा लोक-भाषा थी। विभिन्न कवियों की व्यक्तिगत भाषा में अन्तर होने के कारण ग्रन्थ की भाषा में अनेक रूपता है। पंजाबी भाषा में अपभ्रंश का प्रभाव प्रतीत होता है तो कभी हिन्दी, मराठी, सिन्धी, फारसी तथा अरबी के शब्द भी दिखाई देते हैं। इस प्रकार यह सन्त—भाषा के रूप में दिखाई देती है।

गुरबानी के सन्देश पर विचार करते समय यह स्पष्ट होता है कि गुरु अर्जुन देव ने किसी विशेष सम्प्रदाय की स्थापना हेतु कोई सुचिंतित प्रयत्न नहीं किया था। न ही उन्होंने किसी विशेष दर्शन का प्रतिपादन किया। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि ईश्वर एक है। पर्ल एस. बक की दृष्टि में यह पुस्तक मनुष्य की आंकाक्षाओं, उसकी अभिलाषाओं, परमात्मा से मिलन की उसकी उत्कंठा की अभिव्यक्ति का एक स्त्रोत है। अन्त में निष्कर्ष के रूप में डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के विचारों को उद्धृत कर सकते हैं कि गुरु ग्रन्थ साहिब में हम दिव्य भावनाओं का विस्तार ईश्वर से साक्षात्कार की आंतरिक अभिव्यक्ति तथा दिव्य प्रेम का आनन्दपूर्ण पद पाते हैं।

बी. 83/7 डी. डी. ए. फ्लैट्स, ईस्ट आफ कैलाश, नयी दिल्ली

पुस्तक समीक्षा

शस्त्र से सत्ता तक



तूफान के दौर से पंजाब; लेखक-क्षितीश; प्रकाशक: दी वर्ड पब्लिकेशन्स, 807/95, नेहरू प्लेस, नयी दिल्ली-110019; पृष्ठ : 220; मूल्य 68 रु. (सजिल्द); 48 रु. (अजिल्द)

तूफान के दौर से पंजाब पंजाब समस्या पर श्री क्षितीश की अद्यतन कृति है जिसके 14 अध्यायों में बंटे 220 पृष्ठों में लेखक ने केवल गत 5 जून के आपरेशन 'ब्लू-स्टार' से लेकर सरबत खालसा तक की घटनाओं का प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किया है, बल्कि उन सभी कारणों का विश्लेषण किया है जिनसे सिख समाज में अलगाववादी प्रवृत्ति का उदय हुआ है, जो आज सारे राष्ट्र के लिए चिन्ता का विषय बनी हुई है। इस क्रम में लेखक ने जहां एक ओर गुरु नानक से लेकर दशम गुरु-गुरु गोविंद सिंह तक के सभी गुरुओं की विशेषताओं का उल्लेख कर यह सिद्ध किया है कि किसी भी गुरु ने सिखों को शेष भारतीय समाज से अलग करने की कोशिश नहीं की, तो दूसरी ओर ब्रिटिश काल में अकाली दल की स्थापना से लेकर वर्तमान समय तक के सिखों के पूरे राजनीतिक इतिहास का ब्यौरा प्रस्तुत कर यह दिखाया है कि सिखों में अलगाववादी प्रवृत्ति का बीज अंग्रेजों ने उनमें शेष भारतीय समाज से अलग एक स्वतंत्र राष्ट्रीयता का बोध भरकर रोपा। इस क्रम में उन्होंने राष्ट्र भक्त कूकाओं के अलावा गुरु सिंह सभा, और अकाली दल का इतिहास भी प्रस्तुत किया है जिनके प्रभाव में खालसा सिखों ने अलगाव का परचम उठाया। पुस्तक के पन्ने-पन्ने पर विद्वान लेखक के गहन अध्ययन और सूक्ष्म विश्लेषण शक्ति की छाप अंकित है।

चौथा अध्याय, 'एक आदिम भूख-शस्त्र से सत्ता तक' पुस्तक का महत्वपूर्ण अध्याय है जिसमें लेखक ने उग्रवाद के तीन तथ्यों का उल्लेख किया है। इस अध्याय में यह प्रतिपादित किया गया है कि अकाली दल तथा आतंकवाद के संचालक एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं जो समान उद्देश्यों की प्राप्ति में संलग्न रहे हैं "दूसरा तथ्य यह सामने आता है कि वे विदेशी सरकारों से प्रेरित एवं प्रोत्साहित होते रहे हैं। तीसरा तथ्य यह है कि ये पंजाब के उन बीस प्रतिशत लोगों में से हैं जो पंजाब में सबसे अधिक धनाढ्य हैं। पंजाब का यह अभिजात वर्ग उद्र रिख है जिसमें किसान, बुद्धिजीवी और राजनैतिक लोग शामिल हैं। इस वर्ग के विदेश में फैले लोग विदेशी सरकारों से सम्पर्क बनाए हुए हैं और धन तथा हथियार तस्करों के माध्यम से भारत भेजते रहे हैं। धर्म की आड़ में 20 प्रतिशत लोगों का यह समूह 40 प्रतिशत सिख जनता को गुमराह करके पंजाब में अपना प्रभुत्व और वर्चस्व बनाए रखना चाहता है।"

सिख गुरुओं की चर्चा करते हुए लेखक ने यह विचार प्रकट किया है कि दसवें गुरु गोविन्द सिंह ने यद्यपि खालसा बनाकर सिखों को अपनी पहचान दी। उन्होंने सिख समाज को शेष भारतीय समाज से अलग करने की वकालत कभी नहीं की। उन्होंने **धर्म** से खालसा बनने के विचार का कभी समर्थन नहीं किया। यदि उनका विचार एक पृथक खालसा जाति बनाने का होता तो वे न हिन्दुओं में ज्येष्ठ सन्तान को केशधारी बनाने की परम्परा का श्री गणेश करते, न मात्र व्यस्क को ही अमृत-पान करने की रीति चलाते, न ही सहजधारी व केशधारी में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने का समर्थन करते।'

छठा अध्याय, 'अंग्रेजों का छल और **मेकालिफ़** की माया' एक अन्य महत्वपूर्ण अध्याय है, जिसमें लेखक ने मैकालिफ तथा अन्य अंग्रेज, और अंग्रेजों के पिट्ठू सिख इतिहासकारों के उदाहण देकर यह दिखाया है कि अंग्रेजों ने सिखों को सेना में तरह-तरह से तरजीह देने की नीति अपना कर उनमें अलग राष्ट्रीयता का बीज बोया।

पूरी पुस्तक का निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए लेखक ने कुछ सुझाव दिए हैं। कुछ पूरक सुझाव यहां दिए जा रहे हैं—

1. पंजाब की हिन्दू-सिख जनता यह भूल जाय कि गत तीन चार वर्षों में वहां कुछ अप्रिय हुआ है। (2) सिख समुदाय मजहब और राजनीति को एक मानने का हठ छोड़े। (3) मांगों पर साम्प्रदायिक और प्रांतीय दृष्टिकोण, अपितु राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार हो, सरकार की विवशता और पड़ोसी राज्यों की आवश्यकता को समझने की सूझ पैदा हो। (4) सिख समुदाय 'प्रायश्चित दिवस' मनाकर आतंकवादी गतिविधियों की निन्दा करें और अन्य धर्मावलंबियों से क्षमा-याचना करे।

यह एक ऐसी पुस्तक है जिसे देश-हित की चिन्ता करने वाले प्रत्येक नागरिक को अवश्य पढ़ना चाहिए। छपाई-सफाई नयनाभिराम है।

नरेन्द्र सिन्हा
बी-115 साउथ मोती बाग, नयी दिल्ली-110021,

वार्तापर्व

जो पढ़ें उसे आत्मसात करें...

–वी. एन. गाडगिल



श्री वी. एन. गाडगिल को पुस्तकें भेंट करते हुए प्रकाशन विभाग के निदेशक डा. श्याम सिंह शशि

नयी दिल्ली : केन्द्रीय सूचना और प्रसारण मंत्री श्री वी. एन. गाडगिल ने गत 12 फरवरी को राजधानी में आयोजित एक समारोह में भारत सरकार के प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित बारह पुस्तकों का विमोचन किया।

ये पुस्तक थीं—**भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास खंड 4, हमारे मुस्लिम संत कवि, भारत की मस्जिदें, प्रवासी क्रांतिकारी, हनुमान प्रसाद पोद्दार, मराठा शक्ति का उदय।**

उपर्युक्त सभी छह पुस्तकें हिन्दी भाषा में हैं। अन्य पुस्तकें थीं—**हैंडीक्राफ्ट्स आफ राजस्थान और यू. तिरोत सिंह (अंग्रेजी) विश्व की श्रेष्ठ लोक कथाएं (मलयालम), बच्चों की रामायण (मराठी) सरीसृप की कहानी (तमिल) और अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी (उर्दू)।**

प्रकाशन विभाग एशिया का सबसे बड़ा प्रकाशन संस्थान है। यहां से हिन्दी, अंग्रेजी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की अब तक 6 हजार से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अपनी पुस्तकों के अलावा प्रकाशन विभाग 22 अन्य प्रमुख प्रकाशन



संस्थानों की पुस्तकें भी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाजार में बिक्री करता है। इन संस्थानों में साहित्य अकादेमी, नेशनल बुक ट्रस्ट, **एन. सी. ई. आर. टी., सी. एस. आई. आर., आई. सी. ए. आर. और आई. सी. सी. आर. शामिल हैं।** विमोचन-समारोह में बड़ी संख्या में उपस्थित समाज के सभी प्रबुद्ध वर्गों के लोगों को सम्बोधित करते हुए श्री गाडगिल ने कहा कि किताबें पढ़ना ही काफी नहीं है, उन्हें आत्मसात करना भी आवश्यक है। उन्होंने कहा कि हमें प्रकाशन विभाग से यह आशा रहती है कि वह ऐसी किताबें प्रकाशित करे जिन्हें पढ़ने के लिए लोग लालायित हों और पढ़ने के बाद उन्हें पूरी तरह आत्मसात् करके ज्ञान अर्जित कर सकें।

सूचना मंत्री ने आशा प्रकट की कि प्रकाशन विभाग न केवल अधिक से अधिक किताबें प्रकाशित करेगा बल्कि उनके स्तर में भी सुधार लायेगा। ताकि अधिकाधिक उत्कृष्ट पुस्तकें पाठकों को सुलभ हो सकें।

इस अवसर पर प्रकाशन विभाग के निदेशक डा. श्याम सिंह शशि ने मंत्री महोदय तथा अन्य अतिथियों का स्वागत करते हुए बताया कि प्रकाशन विभाग ने अब अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तक बाजार में भी अपना स्थान बना लिया है। गत वर्ष विभाग ने फ्रैंकफर्ट और मोरिशस में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तक मेला और प्रदर्शनी में अपनी किताबें प्रदर्शित कीं। डा. शशि ने कहा कि हमारा प्रयास है कि आगे भी हम इस तरह के अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तक मेलों में भाग लें ताकि किताबों के माध्यम से भारतीय संस्कृति और विकास का परिचय सारी दुनिया को करा सकें।

समारोह में सूचना और प्रसारण मंत्रालय के सचिव एस. एस. गिल संयुक्त सचिव श्री के. एस. बैदवान महात्मा गांधी के पौत्र श्री कनु गांधी और उनकी पत्नी तथा राजधानी के अनेक जानेमाने पत्रकार, साहित्यकार और विद्वान मौजूद थे।

—प्रवीण उपाध्याय
बी-55, गुलमोहर पार्क, नयी दिल्ली

चिलचिलाती सर्दी में 'यथासम्भव' की गर्माहट

श्री शरद जोशी के चुने हुए सौ व्यंग्य लेखों के प्रतिनिधि संकलन 'यथासम्भव' के प्रकाशनोत्सव के रूप में भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा गत 29 दिसम्बर को मिलन गोष्ठी आयोजित की गयी। इस मिलन गोष्ठी में अभ्यागतों का स्वागत करते हुए भारतीय ज्ञानपीठ के सचिव श्री बालस्वरूप राही ने कहा—विशिष्ट लेखकों की चुनी हुई प्रतिनिधि रचनाओं को एक ही स्थान पर एक संकलन के रूप में प्रस्तुत करना भारतीय



श्री अशोक कुमार जैन 'यथासम्भव' की प्रति श्री शरद जोशी को भेंट करते हुए

ज्ञानपीठ की परम्परा रही है। इसी क्रम में प्रख्यात व्यंग्यकार श्री शरद जोशी का यह संकलन प्रकाशित किया जा रहा है। चुनाव स्वयं लेखक का है, मात्र प्रस्तुतीकरण हमारा है।

इसके बाद भारतीय ज्ञानपीठ के प्रबंध न्यासी श्री अशोक कुमार जैन ने 'यथासम्भव' की प्रति श्री शरद जोशी को भेंट की।

हिन्दी व्यंग्य साहित्य पर शोध प्रबंध प्रस्तुत करने वाले नई पीढ़ी के समर्थ कवि-समीक्षक डॉ. शेरजंग गर्ग ने अपने सारगर्भित आलेख में कहा—शरद जोशी के व्यंग्यों की खास पहचान यह है कि उनमें प्रहार के तीखेपन के साथ-साथ विनोद और चुटकी पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है। उनके निबंध 'शुगरकोटेड पिल्स' की तरह हैं। उन्हें सटकने में पाठक को कोई कष्ट भी नहीं होता और उनका असर बहुत जल्दी काम करने लगता है।

इस सटीक एवं सारगर्भित 'कर्टेन रेजर' के बाद शरद जोशी जी के दो भूतपूर्व सहयोगियों, अभिन्न मित्रों तथा अग्रणी पत्रकारों श्री राजेन्द्र माथुर और श्री प्रभाष जोशी ने जोशी जी के व्यक्तित्व के कुछ अनदेखे पहलुओं की निजी एवं अनौपचारिक चर्चा की।

इस आत्मीय मिलन गोष्ठी में श्रीमती अमृता प्रीतम, श्री विष्णु प्रभाकर, श्री मन्मथनाथ गुप्त, श्री मनोहर श्याम जोशी, श्री रमानाथ अवस्थी, डा. लक्ष्मीनारायण लाल, श्री क्षेमचन्द्र सुमन, श्री चिरंजीत, श्री अवधनारायण मुद्गल, श्री सुरेन्द्र तिवारी, श्री कन्हैयालाल नंदन, श्री अरविन्द कुमार, श्री जय प्रकाश भारती, डॉ. हरिकृष्ण देवसरे, श्री रमेश बक्षी, श्री हिमांशु जोशी, श्री द्रोणवीर कोहली, श्रीमती सुनीता जैन, डॉ. पुष्पा राही, श्रीमती विभा देवसरे, श्री भूपेन्द्र स्नेही आदि सहित अनेक प्रमुख साहित्यकारों, प्रकाशकों एवं अन्य विशिष्ट नागरिकों ने भाग लिया।

—भूपाल सूद

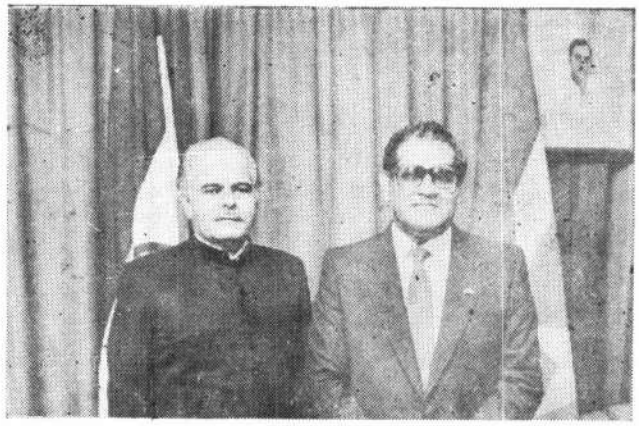
सूरीनाम में भारत का गणतंत्र दिवस समारोह

सूरीनाम निवासियों में भारत के प्रति निरंतर बढ़ती जन-रुचि का परिचय एक बार फिर इस वर्ष भारतीय गणतंत्र दिवस की 36वीं वर्षगांठ के अवसर पर आयोजित समारोहों के दौरान मिला। यों तो यहां के समाचार-पत्रों में भारत में हुई घटनाओं के समाचार प्राय: प्रकाशित होते रहते हैं और अब उनका रुख पश्चिमी देशों के समाचार पत्रों की भांति कटुता और दुर्भावनापूर्ण नहीं रहता, पर इस बार भारत के गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर ही यहां के समाचार पत्रों ने भारत में आजादी के बाद हुए औद्योगिक-आर्थिक विकास, सामाजिक प्रगति और विस्मय-जनक राजनीतिक स्थिरता की प्रशंसा करते हुए लम्बे-लम्बे लेख प्रकाशित कर भारत की नीतियों और प्रगति के प्रति लोगों में बढ़ते सम्मान का आभास दिया। स्वागत समारोह की खबरें सभी प्रमुख दैनिकों के प्रथम पृष्ठ पर पूरी प्रमुखता से प्रकाशित हुई।

गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर राजदूतावास में आयोजित एक भव्य समारोह में सूरीनाम के राष्ट्रपति महामान्य श्री राम दत्त मिसिर एवं उनकी धर्मपत्नी, सूरीनाम के प्रधान मंत्री श्री उदेनहूत तथा नई मंत्रि-परिषद के सदस्य, सूरीनाम स्थित सभी विदेशी राजनयिक तथा बहुत बड़ी संख्या में नागरिक उपस्थित थे। नागरिकों में, इस देश में रह रहे प्राय: सभी वर्गों, धर्मों और संस्थाओं के लोग थे।

समारोह में बोलते हुए भारत के राजदूत श्री बच्चू प्रसाद सिंह ने महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू, श्रीमती इंदिरा गांधी जैसे राष्ट्र नेताओं को याद करते हुए कहा कि इन नेताओं ने सत्य, अहिंसा, विश्व-शान्ति और भाई-चारे को भारत की विदेश नीति का आधार बनाया था और उन पर चलते हुए हम राष्ट्रों के बीच आपसी और सद्भाव के रास्ते पर चल रहे हैं। श्रीसिंह ने कहा कि हालांकि हमारे दोनों देशों के बीच मैत्री की परम्परा बहुत पुरानी और ऐतिहासिक है फिर भी हम इसे लगातार और मजबूत बनाने के लिए प्रयत्न करते रहने में विश्वास करते हैं।

सूरीनाम के राष्ट्रपति ने भारतीय राजदूत को गणतंत्र दिवस के अवसर पर बधाई देते हुए कहा कि अपनी प्रगति की तेज रफतार के कारण ही भारत ने कई दशकों के अन्तराल को पार कर लिया है और इस शताब्दी के शुरू में, औपनिवेशक शासन के दौरान हम जिस भारत को केवल मजदूर निर्यात करने वाले देश के रूप में जानते थे वही भारत आज विविध क्षेत्रों में अपने विशेषज्ञ सारी दुनियां और विकासशील देशों को भेजकर और अपने अनुभव द्वारा उनके विकास में सहायता कर रहा है।



गणतंत्र दिवस के राष्ट्रपति श्री राम दत्त मिसिर के साथ भारत के राजदूत श्री बच्चू प्रसाद सिंह

भारत के तकनीकी विकास और इसके उत्पादों की प्रशंसा करते हुए राष्ट्रपति ने कहा कि वे विश्व बाजार में स्तरीय प्रतिस्पर्दा में खरे उत्तर रहें हैं। सूरीनाम और भारत के आपसी संबंधों की चर्चा करते हुए राष्ट्रपति ने इनके निरंतर बढ़ने की आशा की और इस दिशा में भारत के राजदूत और दूतावास के सतत् प्रयत्नों की सराहना की।

दिनांक 6 जनवरी 85 को स्थानीय थालिया सभागार में भारतीय संगीत, नृत्य, और पाठ्यों के विविध कार्यक्रमों से हो परिपूर्ण एक सांस्कृतिक समारोह आयोजित किया गया। भारतीय दूतावास और भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र द्वारा अब तक आयोजित समारोह, प्रबंध, प्रदर्शन और कला की दृष्टि से इतने पूर्ण रहे हैं कि इन कार्यक्रमों की प्रतीक्षा यहां के लोग काफी पहले से करने लगते हैं और बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित रहकर पूरे समय तक भारतीय कला का रसास्वादन करने का प्रयत्न करते हैं। □

प्रस्तुति : कुमारी जयंती सिन्हा
द्वारा भारतीय राजदूत, सूरीनाम

शुक्ल शताब्दी के उपलक्ष्य में साहित्य संगम

कालिकट विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के तत्वावधान में गत दिसम्बर में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जन्म शताब्दी समारोह का आयोजन किया गया। समारोह का उद्घाटन मलयालम के प्रख्यात साहित्यकार एवं कालिकट विश्वविद्यालय के कुलपति श्री जयचन्द्रन ने किया। उन्होंने अपने वक्तव्य में बताया कि शुक्लजी भारतीय साहित्य-नवजागरण के अग्रदूत थे और भारत के अन्य भाषा-भाषियों को उनकी कृतियों से लाभान्वित होने का मौका प्रदान करना समय की सख्त मांग है।



इस संगोष्ठी में हिन्दी और मलयालम साहित्यकार संगम हुआ। सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए मलयालम के समीक्षक एवं संस्कृत के आचार्य प्रो. एम. एस. मेनोन ने कहा कि भारतीय रस-सिद्धान्त को नया अर्थ-आयाम प्रदान करके शुक्लजी ने साहित्यास्वादन और मूल्यांकन का पथ-प्रदर्शन किया था और इस दृष्टि से वे एक युग-स्रष्टा थे।

उक्त संगोष्ठी में मलयालम के आलोचक एवं अनुवादक तथा 'शीर्षक' मासिक के सम्पादक श्री जी. एन. पिल्लै ने अपना मुख्य आलेख प्रस्तुत किया जिसमें शुक्लजी की आलोचना का मूल्यांकन संपूर्ण भारतीय साहित्य के संदर्भ में किया गया। आकाशवाणी कालिकट केन्द्र के श्री हषवर्धन ने शुक्लजी की काव्य-शास्त्र विषयक निबन्धों की समीक्षा प्रस्तुत की। सभी वक्ताओं ने इस बात पर बल दिया कि रामचन्द्र शुक्ल जी की आलोचना सचमुच भारतीय साहित्य की महान उपलब्धि है। इसलिए उनकी प्रमुख रचनाओं का अनुवाद सभी भारतीय भाषाओं में होना चाहिए। सम्मेलन ने भारत सरकार और साहित्य अकादेमी से अनुरोध किया कि वे इस दिशा में कदम उठाएं। □

—ए. एम. मुरलीधरन
एम. ए. शोध-छात्र, हिंदी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय, कालिकट

प्रियदर्शिनी इंदिरा स्मृति नाट्य समारोह

—जवाहर कर्नावट

उज्जैन में शिप्रा संस्कृति संस्थान द्वारा गत 15 से 21 जनवरी तक प्रियदर्शिनी इंदिरा गांधी स्मृति नाट्य समारोह आयोजित किया गया। इस समारोह में सभी नाट्य प्रस्तुतियां भिन्न-भिन्न धरातलों, मानसिकताओं और समस्याओं पर केन्द्रित थी। मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंह ने नाट्य समारोह की शुरूआत करते हुए कहा कि इंदिराजी की स्मृति में किए जाने वाले ऐसे आयोजन उनके उस पहलू को छूते हैं जो उनकी राजनैतिक कार्यशैली में छुप गए थे।

समारोह की प्रथम संध्या मोहन राकेश का प्रसिद्ध नाटक 'आधे-अधूरे' प्रस्तुत हुआ। यह नाटक आधुनिक हिन्दी नाटकों में वास्तविकतावादी शैली का सशक्त नाटक है। निर्देशक धीरेन्द्रकुमार ने नाट्य आलेख की शैली को यथावत् रखते हुए मंच के विभिन्न स्तरों पर बहुकोणीय प्रयोग किए जिससे कथ्य और चरित्रों की जटिलता को उभार मिला।

समारोह के दूसरे दिन दो प्रस्तुतियां हुई। पहली प्रस्तुति रत्नाकर मतकरी के मराठी नाटक 'बारह पैंतीस' के हिन्दी अनुवाद की हुई। यह नाटक शिल्प की दृष्टि से विचित्रता लिए हुए है। इसका प्रारम्भ रहस्य-कथा के तत्वों से होता है तो अन्त जीवन के खण्डहरों की डरावनी छाया से। निर्देशक राजेश श्री वास्तव ने ऐसे दुरुह नाटक को वृत्ताकार त्रिभुजाकार मुव्हमेंट्स एवं कथानक के अनुकूल दृश्य-संयोजन से प्रस्तुत कर स्वयं की सम्भावना को जगाया है। दूसरी प्रस्तुति थी ल. गार्दपीश के फ्रेंच नाटक 'व्हाइट शीप इन द हाऊस' का हिन्दुस्तानी रूपान्तर 'नेहले पे दहला', रहस्य और हास्य की मिली-जुली स्थितियों वाला यह नाटक अपराध मनोविज्ञान पर केन्द्रित है। दिलचस्प कथानक को गिरिजेश व्यास और विजय-शंकर मेहता ने अपने सशक्त अभिनय के चरमोत्कर्ष तक पहुंचाया। पद्मजा दाण्डेकर और सपना गांधी ने भी पात्रानुकूल अभिनय किया। निर्देशक ने दृश्यों के अनुसार संगीत और ध्वनि प्रभावों का प्रयोग कर नाटक को चुस्त बना दिया।

तीसरी संध्या अगाथा क्रिस्टी का प्रसिद्ध नाटक 'पिंजरा' प्रस्तुत हुआ। यह रहस्य रोमांच का नाटक होते हुए भी मानव मन की कोमल भावनाओं का नाटक है जिसमें सारे चरित्र अपनी भावनाओं को बहुत स्पष्ट और तीखे रूप में सामने रखते हैं। →

नहले पर दहला





शराँन लोबेन का ओडसी नृत्य

उत्तर प्रदेश चलचित्र निगम और संस्कृति एवं क्रीड़ा मंच के तत्वावधान में लखनऊ के रवीन्द्रालय में अमेरिकी नर्तकी शराँन लोबेन ने मनमोहक ओडसी नृत्य के कार्यक्रम का शुभारम्भ मंगला चरण से किया ।

लोबेन ने भूमि प्रणाम, गुरु वन्दना के बाद पल्लवी जयदेव की अष्टवादियां और दशावतार वर्णन आदि अनेक मनमोहक नृत्य प्रस्तुत करते हुए अपने नृत्य का समापन 'मोक्ष' से किया । जिसे दर्शकों ने काफी सराहा । लोबेन का भाव प्रदर्शन तो प्रभावी था परन्तु पदविन्यास में निपुणता नहीं थी । फिर भी विदेशी होने के बावजूद शास्त्रीय नृत्य को जिस निपुणता से उन्होंने अपनाया है, उसकी सराहना अवश्य ही करनी होगी ।

संगत करने वाले कलाकार भी उच्चकोटि के थे । पखावज पर गुरु त्रिनाथ महराजा और बांसुरी पर जे. पी. वर्मन, गायन में पूर्णचंद्र माझी और सितार पर प्रो. कादरी ने नृत्य को सफल बनाने में अच्छा संगम प्रस्तुत किया । □

—पुष्पा श्रीवास्तव
255/148, कुंडीरका बंगज लखनऊ-226004

→

समारोह की चौथी संध्या तीन छोटे नाटक 'श्री सिस्टर्स', 'इज्जत का सवाल', 'थाना आफतगंज' प्रस्तुत हुए ।

समारोह की समापन संध्या को चन्द्रकांत देवताले द्वारा हाल ही में रचित नाटक 'प्रार्थना' की 'इम्प्रोवाइजेशन' प्रस्तुति हुई । 31 अक्टूबर के हादसे और साम्प्रदायिक दंगों से उठे प्रश्नों को निर्देशक धीरेन्द्रकुमार ने परिपक्व तैयारी के आडम्बर से बचाते हुए एक त्वरित नाटकीय टिप्पणी के रूप में प्रस्तुत किया । □

डी-10, ऋषिनगर उज्जैन (म. प्र.)

कमला—बीसवीं शताब्दी की सबसे बड़ी त्रासदी

—बिन्देश्वर प्रसाद गुप्ता

पिछले दो दशकों से सर्वाधिक चर्चित तथा विवादास्पद नाटककार विजय तेन्दुलकर का बहुचर्चित नाटक 'कमला' औरतों के खरीद-फरोख्त की कहानी ही प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि इस जिंदा गोश्त के निर्मम व्यवसाय के अनेक पहलुओं के साथ ही कई मुद्दों को भी सामने रखता है ।

पहले की नाट्य संस्था 'अनामिका' ने पिछले दिनों अपनी प्रथम प्रस्तुति 'पोस्टर' के बाद दूसरी प्रस्तुति 'कमला' का चार दिवसीय मंचन स्थानीय कालीदास रंगशाला के प्रेक्षागृह में किया ।

जयसिंह जाधव (रवीन्द्र अवस्थी) एक ऐसा पत्रकार है जो कमला (पूनम चौधरी) को मध्य प्रदेश के लोहारपुर हाट से खरीद कर अपने घर लाया है । वह उसे प्रेस कान्फ्रेंस में ले जाकर औरतों की खरीद-बिक्री के सन्दर्भ में जीते-जागते सबूत प्रस्तुत करता है । नारियों की स्थिति जानवरों से भी बदतर है । कमला एक ऐसी शोषित, उत्पीड़ित व कुंठित मानसिकता की शिकार नारी का प्रतिनिधित्व करती है जो यही समझती आई



है कि स्त्री के सिर्फ दो ही काम हैं—पहला—बच्चा पैदा करना तथा दूसरा-पुरुष की गुलामी जीवनपर्यन्त स्वीकार करना ।

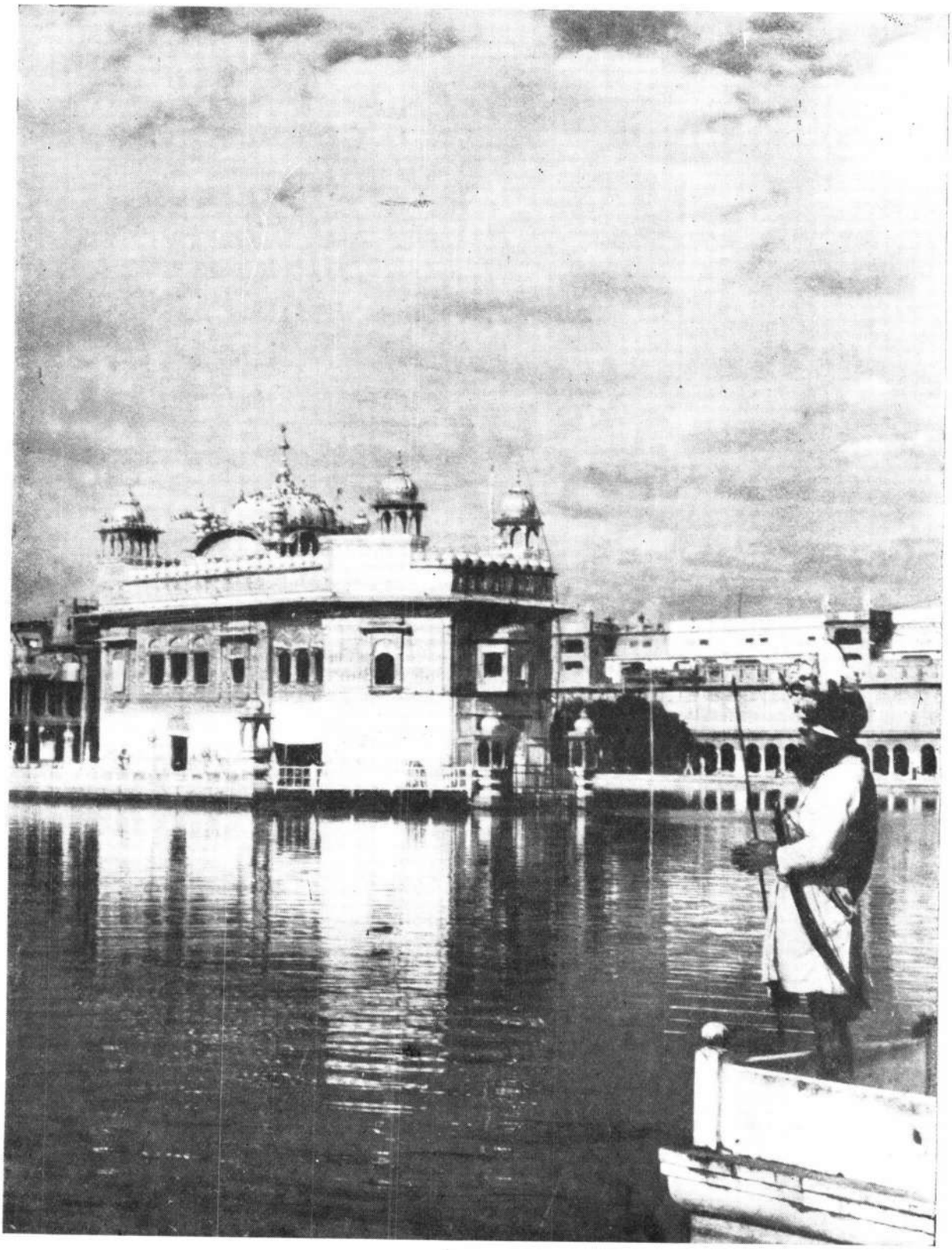
पूरे नाटक में सिर्फ कमला के रूप में पूनम चौधरी का संवेदनशील अभिनय ही सर्वश्रेष्ठ रहा तथा दर्शकों को प्रभावित करने में सक्षम रहीं । रवीन्द्र अवस्थी का निर्देशन कमजोर था । विनीत का संगीत तथा अभय व अरुणसिंह का वेशभूषा तथा रूप-सज्जा नाटक के अनुकूल था । □

लोक निर्माण विभाग सचिवालय,
(वितरण प्रशाखा), पटना (बिहार)

निदेशक : प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-1 द्वारा प्रकाशित तथा बंगाल आफसेट वर्क्स, नई दिल्ली-5 में मुद्रित

डाक तार पंजीयन सं. डी. (डी. एन.) 105 बिना पूर्व भुगतान के सिविल लाईन डाक घर में पोस्ट करने के लिए लाइसेंस यू (डी. एन.)-49 प्राप्त
आर. एन. 701/57

P & T. Regd. No. D (DN)/105
Licenced U (DN)-49 to post without pre-payment at Civil Lines Post Office. Delhi. R.N. 701/57



स्वर्ण मन्दिर, अमृतसर, सोलहवीं शताब्दी ई. का उत्तरार्द्ध